

मूल्य अठारह रुपये (18 00)

प्रथम संस्करण 1980 . कमलेश्वर
GARDISH KE DIN (Reminiscences) by Kamleshwar

गर्हिश के दिन

कमलेश्वर

चारह प्रमुख भारतीय लेखको के आत्म कथ्य



राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मोरी गेट, दिल्ली

भूमिका

'गर्दिश के दिन' भारतीय लेखका के अपने आत्मकथ्य है—कवल उनकी अपनी भीतरी दुनिया के नहीं, बल्कि बाहर की दुनिया से जुड़ने और लड़ने के दौरान जो कुछ उहाने अनुभव किया है और रचनात्मक सघष के जिस दौर से वे लगातार गुजर रहे—उसी मिलसिले का एक आत्मिक और समयगत कथन इन रचनाओं का आधार है ।

कहानी या कथाकार को भाषाओं की सीमा में बद्ध नहीं रखा जा सका है । आज का लेखक भाषा को अपनी मजबूरी मान सकता है पर चिंतन को अपनी भाषा तक सीमित रखने से सहमत नहीं है—इसीलिए आज वह कोई भी रचना, जो अपनी भाषा में लिखी जाती है, वह वैचारिक स्तर पर अपनी भाषा की नहीं रह जाती, बल्कि भारतीय सोच की विस्तृत दिशाएँ उजागर करती है । इसीलिए लेखकों के यह आत्मकथ्य भी किसी प्रदेश या भाषा की मानसिकता का नहीं—बल्कि भारतीय मानसिकता का रचनात्मक और सघषपूर्ण विवरण पेश करत है—यह जितने आत्मीय हैं, उतने ही अनात्म भी क्योंकि इनमें लेखक मात्र लेखकीय दप या दम का बाना पहनकर नहीं आता, वह अपने को अपने समय के भारतीय सामान्य जन के समकक्ष रखकर, उसी की तरह दुख-सुख, यातनाओं, अथाय से भरी आत्मकहानी को समय की गर्दिश में देखता है ।

इस गर्दिश से सभी गुजरे हैं—और अभी बहुत से सघषगील लेखकों को इससे गुजरना पड़ेगा, उन लेखकों को खासतौर से जो 'ललित-लेखन' के पदाधर नहीं हैं बल्कि दलित लेखन के लिए प्रतिबद्ध हैं ।

यह ऐसे ही भारतीय लेखकों की अपनी गर्दिश की विवरण नरी कहानी है ।

'सारिषा' के सम्पादन काल में यह धारावाही मन्मथ प्रकाशित करना

क्रम

माहन राकेश	9
एम० टी० वासुदेवन नायर (मलयालम)	18
कृष्ण प्रसाद मिश्र (उडिया)	27
राजेन्द्र यादव	45
शिवप्रसाद सिंह	75
कृष्णा सोवती	85
चन्द्रकांत बक्षी (गुजराती)	107
भीष्म साहनी	115
हरिशंकर परसाई	128
फिक्र तौमवी (उदू)	135
राही मामूम रजा	143
कमलेश्वर	151

आठ फरवरी, सन् 1941 को अमृतसर के एक प्रतिष्ठित नागरिक का देहात हुआ। वह एक जागरूक कायबता तथा कई एव साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधिकारी थे।

उनकी मृत्यु के दो एक घंटे बाद उनके गब के पास दो तरह का शब्द सुनाई दे रहा था। एक शब्द था घर के लोगों के रोने चिल्लान का, और दूसरा था एक व्यक्ति का गला फाड़ फाड़कर धमकिया देने का। धमकिया देन वाला उस मकान का मालिक था जिसमें वह प्रतिष्ठित नागरिक लगभग पंद्रह साल तक रहे थे। मालिक मकान का कई महीना का किराया उनपर बाकी था और वह कह रहा था कि जब तक किराया अदा नहीं किया जाता, वह मुर्दा नहीं उठने देगा।

कुछ देर में धमकियो का शब्द गायत हो गया। मत्क की विधवा की सोने की झूडिया, जो वैसे भी उतरती, उतारकर मालिक मकान को द दी गई। इस तरह मालिक मकान ने मुर्दे को अपने बंधक से मुक्त कर दिया।

उन प्रतिष्ठित नागरिक का नाम था श्री कमचंद गुगलानी। वह बवालत करते थे। उनका बड़ा लडका मदन, जो उस घटना के नमय अपना सिर बाह्य म डाले घर की सीडिया म बैठा था बाद में मोहन रावेश के नाम से हिंदी म कहानिया लिखन रगा।

मदन को इस नाम से लिखते अब कई साल हो गए हैं, मगर जब-तब उसे लगता है कि यह नाम उसके लिए बहुत पराया है—इस नाम न उसके वास्तविक नाम को उसी तरह छु लिया है जस कई बार जीवन की रूमानी कल्पनाए व्यक्ति की यथाय दष्टि को छु लेती हैं।

लिखने का उत्साह उसे अपन पिता से, अपन घर के वातावरण न ही प्राप्त हुआ था। हर शाम को पिता की बैठक में उनके मित्रो की मडली

एकत्र होती थी । आधी आधी रात तक उनमें वाल्मीकि से लेकर मैथिलीशरण गुप्त तक की आलोचना प्रत्यालोचना चलती रहती थी । मदन एक तरफ कोन म बठा मुना करता । सस्कृत का विद्यार्थी होन के कारण वह उन दिनों उस भाषा में गद्य और पद्य-रचना वा अभ्यास भी किया करता था । उसके अध्यापक, पंडित राधारमण, उसके पद्यों में व्याकरण की अशुद्धियाँ दिखाता करते थे । जब किसी पद्य में उह अशुद्धि न मिलती तो इस तरह सदेहपूण दृष्टि से उसे देखते जैसे उसने कोई अपराध कर डाला हो ।

रचना वा उत्साह रचना की प्रेरणा नहीं है, यह बात मदन नहीं जानता था । उसके लिए अपना उत्साह ही सब कुछ था । पिता की मृत्यु के कुछ समय बाद वह सस्कृत से हटकर हिंदी में लिखने लगा । उसकी दीदी न लिखने के लिए उस नया नाम चुन दिया । इस नाम में लिखी उसकी पहली कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई ।

पिता की मृत्यु के दिन की घटना से उसके हृदय में एक रिसता हुआ बिंदु बन गया था जिस वह किसी तरह मुनाए रखना चाहता था । जीवन वा वह विरूप अनुभव उमकी दृष्टि में उसके व्यक्तित्व का एक आहत पक्ष था जिस उसे अपने तक ही सीमित रखना था । चेतन स्तर पर उसके रचना के उत्साह में उस बिंदु का कोई याग नहीं था । वह नहीं समझता था कि उसके लिखे शब्दा में अनायास ही जो एक कण्ठ धुन जाती है उसका वास्तविक स्रोत अदर का वह रिसता हुआ बिंदु ही है ।

विभाजन के दिनों में वह लाहौर में था । उस विभीषिका न उसे वहा से खदेड दिया । उन दिनों उसे जीवन के जिस विरूप का परिचय मिला वह सन इकतालीस में अपने घर में देखे हुए विरूप से वही बडा, वही अधिक नृशम था । विस्फोट, अग्निकांड, हत्या, लूटपाट और पाशविक बलात्कार ! पंद्रह अगस्त के दिन वह अमृतसर में था । वहा से दिल्ली होता हुआ आजीविका की खाज में बम्बई पहुँचा, तो उमके अदर वा वह बिंदु पहले से कही गहरा हो चुका था । रात को बोरीबदर स्टेशन पर गाडी से उतरन पर एक नया अनिश्चित भविष्य उसके सामन था और उस भविष्य को आकार दन के लिए एक नया शहर था—अपनी

चकाचीय मे गुम और अपनी मशीनी गति मे अबसन ।

वह कई महीने वेकार रहा । भूखा रहा । फुटपाथ पर सोया ।

इस बीच उस शिमला से एक पत्र मिला । पत्र उसीका था जिसके साथ एक सूत्र मे बधकर उसने जीवन बिताने का निश्चय कर रखा था । उमने लिखा था कि वह दो एक सप्ताह के लिए ही वहा आई है । उसे बुलाया था तुरत । लिखा था कि आगे के जीवन का निणय उसके वहा आन पर ही टिमर करता है ।

मदन के पास शिमला पहुंचन तक के लिए बिराये के पैस नही थ । उधार की ब्यवस्था भी वह नही कर सकता था । वह नही जा सका । अपनी असली विवशता को छिपाकर उसन पत्र म और आर बातें लिख दी । उस पत्र का उत्तर नही आया । उसके बाद भी उसने बितने ही पत्र लिखे परतु उनका भी उत्तर नही आया । कुछ दिनों बाद सूचना मिली कि वह न जान किस रोग से चल बसी है ।

अदर का बिंदु पगला उठा ।

वह पागला की तरह यहा स वहा घूमता रहता । बिजली को गाडिया, बसा के लम्बे-लम्बे ब्यू मूसलाधार बपा और छाते लिए या बरसातिमा पहुंचने मशीनी गति से सडकें पार करते हुए लोग । हर भीड पर कोई न कोई चीज उस बिंदु से टकरा जाती, जिससे वह और रिसने लगता । मदन को लगता कि वह भीड एक समुद्र है जिसमे उसे हताश भाव से जिदगी भर हाथ पैर मारते रहना है और कभी किसी किनारे से लगने की सभावना नही है ।

परतु जुहू मे रेतील विस्तार पर खडे होकर समुद्र की उमडती हुई लहरा को देखने मे उसे बहुत सतोप मिलता था । वह घटो वहा टहलता रहता । लहरो पर तैरकर आते हुए लहरो के पोत, नीचे को भुका हुआ आकाश, दूर की चमकती हुई रेत मध्या और रात के सगम वा सुरमई विस्तार, हवा का मासल स्पश, दूर से सुनाई देती हुई लोरियो जैसी आवाज, किनारे की टिमटिमाती हुई उदाम बत्तिमा—इन सबसे अदर के बिंदु को कुछ सहारा मिलता था । वह वातावरण कोमल हाथो से उस बिंदु को सहलाता सा लगता था ।

जीवन की गति तब हो रही थी। नौकरी मिली और छूट गई। फिर बकारी। फिर नौकरी, और फिर बकारी, भटकन और अस्थिरता। यहाँ से वहाँ, वहाँ से और वही। नये नये परिचय, नय नय आघात। परिस्थितियों की नई नई चुनौतियाँ। कोमल ताता के ताने-बान बुनने के नये नये प्रयत्न। नग आकषण, नई असफलताएँ, नय प्रयत्न।

लिखना लगभग छूट गया था। वह मात्र बचपन का उत्साह लगता था। जीवन के विशाल के परिचय और सपके से मन की गहराइयों में जो उथल-पुथल होती थी, नई नई पीड़ाएँ अदर के बिंदु पर जो सूक्ष्म चिह्न छोड़ जाती थी, जीवन की सगति अपने व्यक्ति सदम की जो वास्तविकता सामने लाती थी उस सबके सामने अपना आप असमर्थ लगता था और उस असमर्थता में रचना का प्रयत्न खोमला जान पड़ता था। बच्चा के हवा में गुंभारे उड़ान की तरह साखले शब्दों को हवा में उछालने की साधकता ही क्या थी ?

आसपास जीवन का वाह्य रूप और आंतरिक मायताएँ जल्दी जल्दी बदल रही थी। वह इस बीच कई जगह रह चुका था। जोधपुर, बम्बई, दिल्ली, जालंधर, शिमला और फिर जालंधर। इनके अलावा और भी कितनी ही जगह घूम भटक चुका था। एक बार घर बनाकर उम डहन भी देख चुका था। जीवन किसी साँचे में ढलता ही नहीं था। मन की अस्थिरता ज्या-की-थो थी। अदर का असतोष भी उसी तरह था। हाँ, रिसता हुआ बिंदु अब उम तरह नहीं रिसता था।

क्या वह बिंदु धीरे धीरे सूख रहा था या किसी और रूप में परिणत हो रहा था ? उसका लिपन का उत्साह फिर लौट आया था। परंतु अब भी क्या वह केवल उत्साह ही था ? या क्या अदर के बिंदु की परिणति के माध्य उसका कुछ सम्बंध था ?

उसे लगता था कि वह उत्साह अब उत्साह नहीं, एक समपण है। यह भी लगता था कि व्यक्ति रूप में वह बहुत गौण है, उस रूप में कोई भी व्यक्ति बहुत गौण है। व्यक्ति की साधकता एक विनाल सदम व अतगत उमकी स्थिति के कारण ही है। वह सोचता कि क्या उसका समपण अदर के बिंदु के प्रति ही है या उम विनाल सदम व प्रति भी ? और वह

समय केवल एक विवशता, निरवश, अहेतुक विवशता तो नहीं है ?
 उनके पीछे क्या एक व्याकुलता भी है—अदर के बिंदु के लिए एक बृहत्तर
 और गुंथता के सरस पाप की व्याकुलता ?

अब भी बार-बार उनके मन में यह प्रश्न उठता है कि वह क्या लिखना
 है ? क्या केवल अपनी व्याकुलता, अपनी पीड़ा को दूसरा तक प्रेषित
 करने के लिए ही ? परंतु अपनी पीड़ा के अनुभव से दूसरा को पीड़ा देने
 में क्या मायबता है ? क्या वह ऐसे पर पीड़न का सुख चाहता है ? अपनी
 पीड़ा का प्रतिशोध चाहता है ? यदि ऐसा कोई उद्देश्य उसे प्रेरित करता
 है, तो क्या उम्र उससे लड़ना नहीं चाहिए ?

परंतु पीड़ा का संप्रेषण दूसरा में पीड़ा की मष्टि के लिए न होकर
 उनमें पीड़ा के प्रति एक संवेदनशीलता जगाने के लिए भी तो हो सकता
 है । क्या ऐसा है ?

परंतु अपने अचेतन का ठीक ठीक विश्लेषण वह कैसे कर सकता है ?
 इस तरह का विश्लेषण करने के लिए जो तकबुद्धि चाहिए, वह क्या कुछ
 इन गिन मनस्विया को ही प्राप्त नहीं होती ? और हर रचनाधर्मी मनस्वी
 कहा जाता है ?

मैंने अपनी शुरू-शुरू की कहानियाँ जिन दिनां लिखीं—उनमें में कई
 एक 'इनमान के खडहर' में (भी) सकलित नहीं हैं—उन दिनों कई कारणों
 में मैं अपने को अपने तब तक के परिवेश से बहुत बटा हुआ महसूस करता
 था । दिन व्यक्तियाँ और सम्चारों के बीच पलकर बड़ा हुआ था, उनके
 खोलपेन को लेकर मन में गहरी कटुता और वितर्णा थी । घर की पूरी
 जिम्मेदारी सिर पर होने से उसे निभाने की मजबूरी से मन घबराता था ।
 मैं किसी तरह अपने को विरासत के सम्बन्ध से मुक्त कर लेना चाहता था,
 परंतु मुक्ति का कोई उपाय नहीं था । छोटा भाई इतना छोटा था, बड़ी
 बहन इतनी सम्भारग्रस्त और माँ इतनी असहाय कि मेरी 'स्वतंत्रता' की
 भूख कोरी मानसिक उड़ान के सिवा कुछ महत्त्व नहीं रखती थी । मेरी
 शुरू की कहानियाँ इसी मानसिकता की उपज थीं ।

एक छोटा सा दायरा था तीन चार दोस्तों का । वे सब भी किसी न-

किसी रूप में अपने अपने परिवेश से ऊबे या कट हुए लोग थे। किसी भी रचना की साक्ष्यता इसी में थी कि कहाँ तक उससे उस दायरे की मानसिक अपेक्षाओं की पूर्ति होती है। हममें से दो आत्मी, मैं और मरा एक और साथी, सस्कृत में एम० ए० कर चुके थे, एक अग्रजी में एम० ए० कर रहा था और दो एक लोग पत्रकारिता के क्षेत्र में थे। मेरे सस्कृत के सहपाठी को छोड़कर हम सबके लिए लाहौर की जिंदगी नई चीज थी और हम लोग ज्यादा-से-ज्यादा समय घर से बाहर रहने के लिए पूरा-पूरा दिन माल पर कॉफी हाउस या चैनीज लक्षहोम से लेकर स्टड्ड और लोरेण्ड बार के बीच बिता दिया करते थे। हम इस 'जीवन बोध' में दीक्षित बनने वाला व्यक्ति मेरा सहपाठी ही था, जो पचाव मत्रिमंडल के एक सदस्य का दत्तक पुत्र होने के नाते हम सबसे अधिक साधन-सम्पन्न था क्योंकि जुमलेबाजी उसकी बहुत बड़ी विशेषता थी इसलिए हम सब, उससे प्रभावित होने के कारण, कॉफी-हाउस से लेकर साहित्य तरहर जगह को सिर्फ जुमलेबाजी का अखाड़ा मानते थे इसलिए यह अस्वाभाविक नहीं था कि अपने ढंग से हम अपनी कहानियों में जुमलेबाजी का अभ्यास करते। पर उसी शब्दों के अतिरिक्त मोह के कारण आज उस समय की रचनाएँ (इतनी) बेगाना लगती हैं।

सन् पचास से सन् चौबिस के बीच का समय मेरे लिए काफी उथल-पुथल का समय था। विभाजन के बाद काफी दिनों तक बेकारी की मार मरने के बाद बम्बई के शिक्षा विभाग में जो लेक्चररशिप मिली थी, वह सन उनचास में छिन गई थी। कारण था आखी का निर्धारित सीमा से अधिक कमजोर होना। उसके बाद बेरोजगारी के कुछ दिन दिल्ली में कटे, फिर जालंधर के डी० ए० बी० कॉलेज में लेक्चररशिप मिल गई। लेकिन छह महीने बाद सन पचास के शुरू में बिना वनफम किए उस नौकरी से भी हटा दिया गया। इस बार कारण था 'टीचिंग यूनियन की गतिविधि में सक्रिय भाग लेना। जिन साथियों के भरोसे अधिकारियों की दमन नीति का विरोध किया था, उनके विदक जाने से खासा मोहभंग हुआ। बेरोजगारी का आतंक नये सिर से सिर पर आ जाते से काफी दीड धूप बरके गिमला के विंग बॉटन स्कूल में नौकरी कर ली। परंतु उत्तरोत्तर मोहभंग की प्रक्रिया

उसके बाद वर्षों तक चलती रही। जीवन के उखड़ेपन को समेटने के इरादे से सन् पचास के आते में विवाह कर लिया, पर वह भी एक और स्तर पर मोहभंग की शुरुआत थी। सन् बावन तक आते आते परिस्थितियों की पकड़ इस तरह बसने लगी थी कि आखिर नौकरी छोड़ दी। तय किया कि जैसे भी हो अपनी 'स्वतंत्रता' बनाए रखते हुए केवल लेखन पर निर्भर रहकर न्यूनतम साधनों में गुजारा करने की कोशिश करूंगा। लेकिन यह अभियान भी ज्यादा दिन नहीं चल सका। नये सिये से नौकरी की तलाश में जुट जाना पड़ा। कई जगह कोशिश कर चुकने के बाद जब मन लग भग हारने लगा तो एक व्यंग्यात्मक स्थिति सामने आई। जालधर के डी० ए० वी० कॉलेज में, जहां तीन साल पहले हिन्दी विभाग में पाचवीं जगह पर 'वनफर्म' नहीं किया गया था, वहीं पर अब विभागाध्यक्ष के रूप में बुला लिया गया। मुझे नौकरी तो मिल गई, पर मोहभंग की वह प्रक्रिया जो वहां से जाने के समय शुरू हुई थी, वह तब तक वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक, कई-कई स्तरों पर अपने चरम तक पहुंचने लगी थी।

दूसरी धार जालधर में नौकरी करने से पहले खानाबदोशी के दौर में कहानियां नहीं लिखी गईं। विराप बॉटन स्कूल से नौकरी छोड़ने और डी० ए० वी० कॉलेज, जालधर में वापस आने के बीच केवल पश्चिमी समुद्र-तट का यात्रा विवरण लिखा जो 'आखिरी चट्टान तक' शीपक से प्रगति प्रकाशन से (ही) प्रकाशित हुआ। लम्बे अरसे के बाद जो पहली कहानी लखी, उसका शीपक था 'सौदा'। यह कहानी जो कि 'कहानी' में प्रकाशित हुई, मेरी पहले की कहानियों से इतनी भिन्न थी कि एक तरह से उसे मेरे लेखन के उस दौर की शुरुआत माना जा सकता है, जिसमें आगे चलकर 'उसकी रोटी', 'मदी', 'मसखे का मालिक', और 'जानवर और जानवर' जैसी कहानियां लिखी गईं। अपने परिवेश से बट होने की अनुभूति का स्थान एक सबथा दूसरी अनुभूति न ले लिया था और वह थी जुड़े होने की अनिवायता की अनुभूति। एक तरह की कड़वाहट इस अनुभूति में भी थी। पर वह कड़वाहट निरर्थक और आरोपित नहीं थी। उसका उद्देश्य भी जुड़े होने की स्थिति में मुक्ति पाना नहीं, उसकी

तात्कालिक शर्तों को अस्वीकार करते हुए जुड़े रहने के गार्हव सदमों को सौजना था

डी० ए० वी० कॉलेज, जालधर, में दूसरी बार की नौकरी मेरी जिम्गी की सबसे सम्झी नौकरी थी । चार साल चार महीने उस नौकरी में वाटन के बाद सन् सत्तावन के अत में मैं वहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया । उससे पहले सन् सत्तावन के अगस्त महीने में सम्बन्ध विच्छेद के कागज पर हस्ताक्षर करके अपने अस्पत्र विवाह सम्बन्ध में भी मुक्त हो चुका था । इस बार यह पक्का निश्चय था कि चाहे जो कुछ भेलना पड़े, अब फिर वहाँ नौकरी नहीं करूँगा । मगर यह निश्चय फिर दो बार टूटा । एक बार दो महीने के लिए और दूसरी बार लगभग एक साल के लिए । पहली बार कोरे आर्थिक दवाव के कारण, जबकि सन् साठ में दिल्ली विश्वविद्यालय में लेक्चररशिप ले ली, पर ज्यादा दिन रिभा नहीं मवा । दूसरी बार एक नये क्षेत्र में अपने को आजमाने के आकषण से, जबकि सन् साठ में 'सारिका' का संपादन कार्य मभाला । डी० ए० वी० कॉलेज, जालधर में त्यागपत्र देते और 'सारिका' संपादक की बेबिन में जा बैठने के बीन एक साल जालधर में ही रहा और लगभग तीन साल दिल्ली में । इन चार सालों में पहला बड़ा नाटक लिखा, 'आपाठ का एक दिन', और पहला उपन्यास, 'अधरे बद कमर' । इन दो रचनाओं के अतिरिक्त कई एक कहानियाँ भी लिखी । इस दौर की अधिकांश कहानियाँ सम्बन्धों की यत्रणा को अपने अकेलेपन में भ्रमते लोगों की कहानियाँ हैं जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिचय को अकित करने का प्रयाम है

सन् तिरैसठ के शुरू में 'मारिका' छोड़ने के बाद से फिर से किसी नौकरी में जाने की नीबत नहीं आई

योग बहुत बलस हैं । अकेलेपन अजनबीपन और आत्महत्या, इन्हें फेंगनेबल चीजें समझते हैं, जैसे कि अशिचयन दि अोरके फदान जनल में स ली गई हो । इसलिए कहने को मन होता है कि हमारे आत्म को कथ्य की अपेक्षा ही नहीं क्वाकि आत्म शाश्वत है और कथ्य—वह तो रोज बदल सकता है । इसलिए आज इस समय हमारे आत्म द्वारा जो कुछ

लिखा जा रहा है, वह भी कल तक गलत हो सकता है

पर यह सब झूठ है। लोग ऐसी बातें याद रखते हैं और गलत वक्त पर उलटे सीधे सवाल करके परेशान करते हैं। इसलिए सबसे अच्छा है कि अपनी तरफ से सवाल ही किए जाए

नई कहानी की पीठिका के साथ मेरा सम्बन्ध किन स्तरों पर है और उसकी मानसिकता के विषय में मेरी क्या धारणाएँ हैं, इस विस्तार में यहाँ नहीं जाऊँगा। केवल इतना कहना चाहूँगा कि मैं उसे एक निरंतर विकासशील दृष्टि के रूप में लेता हूँ जिसकी आंतरिक संभावनाएँ किसी तरह के विराम बिन्दु से अंकित नहीं की जा सकती।

मैं व्यक्तिगत और साहित्यिक, दोनों स्तरों पर अपने को जिंदगी से जुड़ा हुआ पाता हूँ—पर जुड़े होने का अर्थ जिंदगी की सब परिस्थितियों को स्वीकार करके चलना नहीं है। जिंदगी में बहुत कुछ है जिसके प्रति विद्रोह और आक्रोश मेरे मन में हैं पर वह सब जिंदगी के ऐतिहासिक उफान के अंतर्गत आता है। वह आज जैसा है, कल वैसा नहीं रहेगा। नहीं रहना चाहिए और उसके बदलने की ऐतिहासिक चेतना मेरे साक्षीत्व की अनिवार्य शक्ति है। इस विद्रोह और आक्रोश की ही कुछ परिस्थितियाँ हैं जिनमें मैं कई बार अपने को अकेला भी पाता हूँ। पर यह अकेलापन जूझने की एक स्थिति है किसी तरह का अलगाव नहीं। यह जिंदगी से अकेला होना नहीं है, जिंदगी के बीच अकेला पड़कर अपने जुड़े होने का निर्वाह करना है

यायावर के जीवन का सबसे बड़ा सतोप या असतोप इसमें है कि उसका रास्ता कभी समाप्त नहीं होता। वह चाहे जितना भटक ले, नई अनजान पगडंडियाँ का मोह उसके दिल से कभी नहीं जाता जो गुजर चुका है वह उसके लिए दृश्य है—उस दृश्य के अंतर्गत अपना घाव भी। कल रात तक जो दुःखटना थी अब वह उसके लिए एक रोमांचक घटना है। अब नई पगडंडी उसके सामने है। उसमें पूछा जाए कि कमबख्त, तू इतनी जोखिम उठाकर भी जोखिम के रास्ते पर चलने से बाज क्यों नहीं आता तो वह सिर्फ मुस्करा देगा, क्योंकि जिस दिन वह यह जान लेगा, उस दिन वह यायावर नहीं रहेगा।

एम० टी० वासुदेवन नायर

भीत युग के विपरीत विपरीत एक छोटी गली के साथ के बाग्य दागे
यह एक छोटी गली का भीत ही है। यह भी एक गली में तो
विगत रहा है। प्रायः हमारा दुग घोर विगसय की ही बर्हातिया विगत है।
पड़ बिताती यह गली मगर पता के उरगत मन उगत गता है।
आग विगत समय क्या हमपर भी उगत प्यता ग गरी ?

मन उगत गता के दुग म प्रागिर ता गता एक गभीरस्वर का जिनसे
फा मन म रगवर उगती प्रवगता गती की जा गती। मन केरन
की गजघानी विगयततपुरम म एक पागिया न भेजा वा।

गग घोर विगसय की बर्हातिया क्यों विगता है ? (जब मैं दुग की
वान परता है ना मेरा मननय विगी प्रम नग म उरगत दुग की मारे
गगार का दुग माग लिए जाने वान घातमगन स गही।) यह गिफ मर
अपना प्रन गी। दम युग क प्रयक सराय का प्रन है। प्राज हमारी
एक ही मवेदता रह गई है घुणा। वंम ही हम पर हावी होवर घना
दने वानी एक ही मानगिवा है—उवा।

हम अभी विगी भी ऐम युग म नहीं गुजर जिस रगीन कहा जा नवे।
मगर ऐम युग के कुछ छोट मोट सपन हम निदय ही देगा करत थे।
उह भी अब हम सो बैठे हैं। प्राज जीवन की परती जमीन पर हम
भटक रह हैं। जिजीविषा प्राज उमके सपुचित एव व्यापक दोनो प्रयीं
मे एक हडडीतोड मगकरत बन गई है। अनजान मे ही सम के वोज के
नये अकुर की तरह हमारे समालात व जज्यात पनपा-बकने की बजाय
अदर की घोर मुडत जाते हैं।

समकालीन उपयासा वो ही लीजिए। इन उपयासो के क्यादात्
नायक जीवन की चौहद के बाहर लक्ष्यहीन हो भटकने वाले घोर गम साने
वाले बदसूरत (फीवस) होते हैं। शारीरक मानसिक विकृतियों के वे

स्वामी हैं। गुठर प्राप्त की 'टीन ड्रम', कट एड द माउस', जान फाउलस की 'क्लेक्टर' कारसन मैकी वॉरलेस की 'मार्निंग एड ईवनिंग' आदि कृतियाँ ज़रा स्मरण कर दें। जिन पात्रों के साथ हमारी मुलाकात इन उपन्यासों में होती है, उनमें नब्ब फीमदी या तो 'फ्रीक्स हांगे' या फिर आत्मा के अकेलेपन के वंदी।

बिछुड़े हुए किसी सुनहरे अतीत के हम स्वामी नहीं हैं, जिसकी खूबियाँ की जुगाली करते हुए हम आह भरते रहें। सोई हुई पीढ़ी (दि लॉस्ट जेनरेशन) के मोहभंग समकालीन रचनाओं में पाए जाते हैं। इमज़ा भी कोई आसार नहीं कि किसी आगामी सुवर्ण युग की रूपरेखा का सपना देखा करें। स्मरण करने के लिए हमारे पास व्यक्तिगत जीवन के प्रभाव के कुछ छोटे-मोटे सुन और नहं मुन आह्लाद ही बचे हुए हैं।

मरी मवप्रथम कहानी (भगवान की कृपा कि उसने रोसनी नहीं देखी) एक अपंग भित्तारी से प्रेरणा पाकर लिखी गई थी, जिसे एक सगड में बिठाए डोए जा रहा था। रास्त के उस दृश्य में मुझमें रोष उत्पन्न किया होगा। साचा होगा कि इस समाज में ऐसे भी लोग हैं, जहाँ घनी लोग सुख सुविधाओं के साथ जीवते जा रहे हैं।

अब तो भित्तारी अंधे, लूले-लगडे, अपाहिज हर गली के कुँचे में दिखाई देते हैं। मगर अब मैं उन्हें देखता हूँ, मेरा कहानीकार नहीं। उनको जन्म देनेवाली सामाजिक व्यवस्था की याद सचमुच में कभी नहीं करता। कारण, नगर की गलियों की भीड़-भाड़ से बचते हुए लक्ष्यस्थान की ओर छूटते समय, एक ही ध्येय रहता है कि मौत का पैगाम लेकर भागने वाली गाडियाँ के नीचे आकर पिस न जाऊँ पसीने से तरबतर धक्का मुक्की करते हुए बढ़ने वाले लोगों के पैरों तले कुचल न जाऊँ मोरी के पानी से अभिषिक्त न होऊँ। इसलिए क्या इनमें से कोई क्यापान नहीं बन सकता? निश्चय ही बन सकता है। अब भी एक क्या बीज मन में है। एक ऐसे काल्पनिक क्यापान का रूप मन में कुरदा करता हूँ जो नगर के विभिन्न हिस्सों में जिंदा पुनर्जात की बाटा करता है, शाम को ज़ूह एकत्रित कर दिन भर की कमाई ऐँठता है और बोडे से उन्हें नियमित करता है। मगर अब तो सब ने समाज के बारे में सोचना बन्द किया है।

सन् 1947 में मैं तबप्रथम कालिबट गहर में आया था। मैं उन दिनों गौरी कक्षा का छात्र था। गिना के पीछे चलते चलते नगर नामर उम महादम्भुत वस्तु को देता मैं दंग रह गया था। मगर अब तो नगर याननामय अस्मित्य की कृतितादया को याद दिलाता बानी कदवा सचाई मान रह गया है।

इस नगर का विन्सा अब जगत का समाज का विन्सा बना हुआ है। उसके एक विनार गटा हुआ लगभ इम बात के लिए गदा सावधान रहता है कि यह बनी पीना न जाए उसपर लीड न छिटक पड़े, कुचला न जाए और अपना रैन-बस्तर में सही-मलामा पढ़ा जाए।

इसका मतलब क्या यह है कि वह दुग्गी होकर सदा रोता धारा रह ? क्या वह हमारा न कर ? जरूर हास सजना है। नितन ही हमत भी है। सान बेलो की हसी एम परेमान करती है। गुठर घाम की हसी हमारी रगा का भवभोग दी है। कितनों ही की हस्तने की नियामन ही नष्ट हो गई है।

कई सागा को बहते हुए सुना गया है कि मुझे कुछ बटना था, इसी-लिए मैं कहानी लिखन लगा था। मगर जहा तक मेरा सम्बन्ध है, बात ऐसी नहीं है। हासन अल रगीद के महल में ऐम कहानीकार नियुक्त थे जिनका काम था कि राजदरवार को कहानी सुना मुनाकर मनबहलाव करें। खलीफाओं के अत के साथ कहानीकारा का वह सुवण युग भी समाप्त हो गया। अब हम इसलिए कहानी नहीं लिखत कि हमारे महा सुनान के लिए मनोरञ्जक कहानिया का जखीरा है इसलिए भी नहीं कि कहानी लेखन मुनाफे का पगा है। मलयालम के लेखको को मिलनेवाला पारिथनिक नगण्य है। 'लाइबरी के मौज्जन में चार पांच पुस्तकें हर साल किसी तरह निकाल लें तभी यहा का कोई लेखक जी पाता है। लेखक का पेशा ग्लमर का नहीं। नगर के सबसे बड उपयासकार की अपेक्षा किसी उद्योगपति या फुटबाल के खिलाडी को लोग अधिक जानते हैं।

मगर जब लेखक अपने से ही पूछता है तो यह पाता है कि यह सब

अपनापन ही है। वह जीवों के ही हल्का म परे बिनी एक बूँद के बिनारे दुटिया बनावर ची राग है। भीड़ म यह बनना है। अपनी सिलकी मे नाबन ममय उा मुम क घात पय पर एक माग-दीप से दूगरे माग-दीप तक की पाठकी टिगार्द देती है। मुगो जिगो सबी हजार राता म यह बात पगावर सेटा राता है। उपर म गुजरत पुरपा रिपदा की घातके हगो घात घाते यह गुता राता है। उनकी पदरात, ठकी घाते गिगिगो बगरहो म यह घपत मर म जारा मर गड़ जता है।

मरत पहल कहानी लिखत मरत मेर तोरा म था कि तोरो की मन-पाद बगनिदी नाच म है कि नहीं। मरा मा हमना बगि राता था, यह बेनी जो बरत म मार बना था रहा ह। उा विदलपण या ब्याग मरना कटिा है कि उते मूत ह्य टिया जा गदे। नूती की भाग की तरत भीतर नीतर पुनगन बानी हा तीर बेवनी के दीप रिता की तयारी परता ह। जीवा दग बनी न गु मीडवर भात की घपत है। कहानी रपता बात में बवनी उगवी परम भीमा तक पहुपती है। समाप्ति के क्षण म घाहूरा होता है। तात तगाा है रि मार उतना चुरा है नहीं। मभी मभार कहानी लिखत के उपरात एग भी लगता है कि दगकी मुगी जरा मनाई बना न जाए। उग रिा मरत की ह्य म उडती रई की तरह इपर उपर मारा मारा फिर जा ररता ह घावना से गितावर खुर हगा म गरता है, बिनी दयात की बात पर भी पदा बाते की जा गनी है।

बचपन न ही मैं अकेला था। चार भाइयों के मैं सबसे छोटा था। पिता दूर श्रीलंका में काम कर रहे थे। मा एक बड़े परिवार का दोभा उठाए हटना, चुगिया माना भूल सी गई थी। जन्म में हस्तन खेलनेवाले किसी परिवार में जाकर वापस आता, मन बड़ा उदास रहता। मेरे अन्न घर का जीवन यातनामय था। साली सलिहान, कृष्णवध पत्र, महाजन, यशवादी। मुझ जैसे सबसे छोटे लड़के से भी घर की तंगी छिपी न थी।

जीवन में कभी मैं अपनी बपगाठ नहीं मनाई थी इसलिए कि मैं एकटक महीन में जन्मा था। (केरल के लोगों के लिए यह महीना बड़ा अनहस होता है इसलिए कि साठान के मामले में केरल स्वायत्त नहीं।

यहाँ की खेती-बाड़ी से आठ नौ महीने मुश्किल से गुजारे जा सकते हैं।) जिस उम्र में समारोहों के प्रति आकर्षण रहता था, घर पर चावल दवा के लिए भी दुर्लभ हो जाता था। कटाई के महा सुदिन की प्रतीक्षा में एक-एक दिन गुजारना पहाड़ हो जाता। एक बपगाठ की याद आज भी मेरे मन में ताजा है जब तीन रुपये का अनाज कहीं से मगाकर मंगाया और उसका चावल बूटकर भात बनाया गया था। भात तैयार होत-होत तीन बज गया था। भूख अपने आप बुझ गई थी। बड़ा होने पर बपगाठ चाहता तो ठाठ वाट से मनाई जा सकती थी, मगर तब तक सारी उम्र ठंडी पड़ गई थी।

उन दिनों साहित्य सज्जन जीवन से पलाया था। रात को घुघुआती दिवरी के सामने बैठकर कुछ क्लम घिसते समय, दिन भर पहाड़िया की ढलानों पर और मैदानों पर टहलते हुए कहानियाँ, कविताएँ मन ही मन रचते समय, जीवन से दूर हटते जाने की तसल्ली होती थी। जब कालेज का छात्र था, तब भी साहित्य ऐसा रहस्य-लोक लगता था, जैसे कोई माद हो, जिसमें जब चाहे जाकर छिप सकें।

कहानियाँ, कविताएँ पत्रिकाओं को भेजता, कई वापस आ जाती। जो आती नहीं, उन्हें संपादक ने प्रकाशनाथ रख लिया होगा, समझकर बुक स्टाल पर जाता, पत्र पत्रिकाओं के पन्ने पलटकर देखता। हफ्तों गुजर जाते मगर मेरी रचना कहीं भी नजर नहीं आती।

छुट्टी के दिनों में मुश्किल और बड़ जाती। तीन मील दूर के डाकघर में रोज़ हाज़िर होना पड़ता था। वापस आने वाली चीज़ें दूसरों के हाथ में लग जाए।

रोज़ डाकघर में जाना, और खाली हाथ वापस आना, इससे बड़ी धारम लगती थी। अतः मुफ्त में सूचीपत्र भेजने वाले पुस्तक प्रकाशकों को बाड़ लिखता। शुरू शुरू में बारह बारह मील पैदल चलकर हर रविवार को पढ़ने के लिए पुस्तकें ले आना पड़ता था।

कभी कुछ छप भी जाता तो पारिश्रमिक नहीं सबद्ध भ्रम की प्रति नहीं, फिर भी छप हुए अक्षरों में अपनी रचनाएँ देखते समय में उत्तेजित

हो जाता था। घर के लोग को मरी रानाया न कोई दिलचस्पी न थी।

बी० एस सी० पास कर बकारी ठोते टूण खाली जेब घर से निकल पड़ा था। घर के लोग के सामा पिता न एक दिन कहा था—यह मेरा छोटा बेटा। भक्ति, श्रद्धा का नाम नहीं, किसी भी काम का नहीं। बस एक काम इमका श्रव रह गया है—हर राह चलत लोग लुगाइयो के बसिर पर के धारजा न बागउ वाला करना। बाहर के कुछ रिश्तेदार भी मौजूद थे। खाना बीच में छोड़कर उठा था। दूसरे ही दिन रग उड़ी पटी उठाए वन स्टड की धार निकल पया था। वहा एक परिचित कुली स दो रुपये कर्जा लेकर अपनी यात्रा गुरु की थी।

कोई स्थायी काम नहीं। किसी 'ट्यूटोरियल कालज' में अध्यापक बना था। तीन दिन ग्रामसवक का काम भी सभाला था। कुछ महीनो तक सीमित ये काम करत समय भी निखना जारी रहा। इससे कुछ समय के लिए ही सही, जीवन की कडवाहट से निजात पाता रहा।

आज पुस्तको से पैस मिलते हैं। मनपसंद काम मिल गया है। मगर क्या मैं खुश हूँ? नहीं। मेरे अतरतम मे हज्जारो कडवाहटें हैं। ससार की कडवाहटें और कुंठाए मेरे मन में जमती जा रही हैं। जानता हूँ, मेरे क्रोध और विरोध से कुछ होता हवाता नहीं। मेरी पीढी भी यह जानती है। नासूर अल्सर से, लीवर डीरोस' से कुछ 'योग आत्माहुति' करते हैं। जिजीविषा से अभिशापग्रस्त मैं कायर हूँ, अत आत्महत्या नहीं करता। अपनी कडवाहटें और अल्सर लाद साहित्य के अपने छोटे समार में मैं युग का कैदी ही जीवन जी रहा हूँ।

सक्षेप में, अपने एक अतरलोक की तामीर करना, यही कहानी लेखन से करता आ रहा हूँ। छिपन, रान, हसन और सपन देखने के लिए इस तरह की एक छोटी दुनिया की सरत जरूरत है। जीवन में हर खरोच के लगने के साथ उस भेलन की शक्ति के अभाव में ऐसी एक माद की आवश्यकता पडती है, जहा आसानी से घुसा जा सके। रास्ते के किनार यारेलव स्टेशन पर लोग 'ऑटोग्राफ' के लिए साहित्यकार के चारो ओर भीडभाड नहीं करत। साहित्यकार यह सब पसंद करता भी नहीं।

जागरी मज्जार
निकातर

गदिश के दिन 23

वह अपने लिए लिखता है, अपने छोटे सप्ताह को आबाद करने के लिए, जिंदगी की दासता से मुक्त हो अपने बनाए हुए राज्य में स्वामी बनकर रहने के लिए।

हाल ही में कई पंडितों ने आज की परिस्थिति में साहित्यकारों का क्या कर्तव्य हो, इसपर चर्चा की थी। लेखकों के समाज के प्रति दायित्व के बारे में गहन विदलेपण किया गया था। चार अंस चावल, नौकरगाही, लाल पीते सब वर्तमान समाज की समस्याएँ हैं। समाज में जीने वाले लेखक नामक मानव के साथ इसका क्या कोई वास्ता नहीं? जरूर है। भूखे बच्चा को याद कर पसा उधार लेकर फले बाजार में वह भी चावल की खोज में भटकता है। वह भी सरकारी दफतरो के देवताओं की निंदा व यत्रणाओं का शिकार बनता है। इस सब से सजित मानसिकता हो सकता है कि एक न एक दिन उसकी रचनाओं में पैठ भी जाए, मगर मेरी मान्यता है कि लेखक का फज है, लेखक रहना। यही समाज व राष्ट्र की उसके द्वारा की जानेवाली सबसे बड़ी सेवा है।

मेरा खयाल है कि लेखक को अपने प्रति की जाने वाली आलोचनाओं या विवादों का उत्तर देने में समय जाया न करना चाहिए। यद्यपि हमारे यहाँ अब ऐसा करना असंभव लगता है तो भी साहित्यिक सिद्धांतों से सबद्ध बहस में भाग न लेना अच्छा समझता हूँ। सजनशील साहित्यकार को अपने दिल में एक आग को उजागर रखना चाहिए। बहस मुबाहसों से इस आग की गर्मी मंद पड़ जाती है।

मैं समझता हूँ कि समाज से लेखक का दायित्व प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष है। कारण समाज लेखक की हस्ती को कुछ समझता ही नहीं। छोटी कथाओं में निबंध लिखते समय तकियाकलाम की तरह व्यवहृत कुछ वाक्य होते हैं जैसे कलम तलवार से ताकतवर है फ्रेंच आति का मगन वालटेयर और रूसो ने तैयार किया था आदि आदि? मगर अब हमको सत्य को परखने की चेष्टा करनी चाहिए। समाज व राष्ट्र नियंत्रित करने वाले शासकवर्ग और नतागण साहित्य के छोटे लोक की सीमाओं से कितनी ही दूर खड़े हैं। साहित्य उनकी अंतरात्मा में किसी तरह की हरकत पैदा नहीं करता। समाज के बहुत ही कम लोग इस लघु सप्ताह

की हलचल की ओर ध्यान देते हैं।

चीन ने भारत पर आक्रमण किया था। उसका भारत के नागरिक की हैसियत से मैं विरोधी हूँ। मगर उसके बारे में किसी वीर जवान की नायक मानकर मैं उपन्यास नहीं लिख सकता क्योंकि मेरे लिए वह 'मिट्टि-रियल' नहीं बना। जिसने मुझे आघात पहुंचाया हो, उसीकी मैं कथावस्तु बना पाता हूँ। भारत चीन, भारत पाकिस्तान युद्ध, पंचवर्षीय योजनाएँ, अणु बम कुछ भी मेरे कहानीकार मन में कोई गालोडन पैदा नहीं कर सका था।

मानव मन की कई तहों में पैदा होनेवाली हरकतों से लेखक निर्माण काय शुरू करता है। यह मानना भूढ़ना होगी कि कहानियों के मनोविश्लेषणात्मक होने के साथ कहानीकार का समाज बोध नष्ट हो गया। र्व्यक्तित्व अनुभूतियों को वह कहानी का मसाला बनाता है मगर इन व्यक्तियों का अस्तित्व समाज में है। समाज भले ही साहित्यकार में अपेक्षा न रखे, जब व्यक्ति का आधार समाज है उसका उससे बचन का प्रश्न ही नहीं उठता।

मुझे बड़ा सदेह है कि इस आशा से आज कोई लिखता भी हो कि साहित्य से समाज व राष्ट्र को सही रास्ते से चलाया जा सकता है। मगर कभी कभी अपने और अपने पटोसी के और संभवतः समाज व भी अनुभूत सत्यों को वह अभिव्यक्त करता है। अनुभूतियाँ जो जीवन से उसके प्रत्यक्षतम में घुस आई थीं, उसकी अभिव्यक्ति का यह परिणाम निकलता है कि जीवन के कई मोड़ों पर उसके पाठकों जब विविधताओं और विरोधों से पूर्ण अनुभूतियों का सामना करते हैं तो उसे शान्त होता है कि यह दुख सिर्फ अपना नहीं, यह ह्वानियत मात्र मेरे प्रति नहीं है। वह इसकी सहायता करता है कि जीवन की सच्चाई को उसके विविध रंगों और विविधता के साथ अपनाएँ और स्नह या घणा के आवजूद इसमें समझौता करे। वह जान जाता है कि व्यक्तियों की अनुभूतियाँ आधुनिक युग का तोहफा नहीं है जान कब से शुरू हुए जीवन प्रवाह का एक बिंदु मात्र है।

अंतिम विश्लेषण पर ऐसा लगता है कि मेरी कहानियाँ की प्रतिज्ञा कुछ भी हो अपनी मानसिक स्वच्छता के लिए आदर्शपरक अस्तित्व के लिए मैं लिखता हूँ। अपने युग के मानव को, जिनके साथ मैं आप मभी

परिचित हैं, अधिकाधिक जानना भी मेरी इच्छा है। उम भीए अनटाय, त्रग मानव स, जो यह जान के वायजूद कि अपने परा तने यह जो पिन रहा है वह एम मूत्य है जिापी आराधना दूसरा न माय यह भी खुद करता है—आग यदव व लिए उह दार-दार बुचनना जाता है। हसत यक्त यन्न रोना है रात यका अदर ही अदर हमता है। उमके कई मुवाँट होत है। उमके अदर व यद यगरा म घुमत समय कभी वट चीज दिनाइ दती ह जा पटन नमूदार न हुई थी। उमके जीवन का सार अनावन करन के क्षणा म यह अनुभव होता है कि 'मैं भी जो रहा हू।' हर कोई चाहता है कि ऐसा अनुभव प्रदाा करन वाले क्षण वह भी भोगा करे, मरु-भूमि के बीच नखलिस्ताना की तरह। अपन ढग से यह नखलिस्तान राज-मिस्त्री स लेकर गुमास्ता उद्योगपति सबने दसा होगा।

गुठर शास क उप-यास के नायक के जिसका गारीरिक् विकास छुट पन म ही रक गया था गले में एक टीन का राजा है। परगानी या उल्हाम के वक्त वह उसे बजाता है। जीवन जब मुरझा जाता है, क्षुब्ध मन की प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए हममे से हरएक एक एक टीन का बाजा खोज करता है।

कहानीकार उसे अपने अध्ययनकक्ष में पाता है।

अनुवाद रवि वर्मा

कृष्णप्रसाद मिश्र

बरामदे में चटाई बिछाए सोत-सोत ऊपर ताकने से नारियल के लम्बे पेड़ बाल बिरारे पागला की तरह दिखत हैं, जिनके पत्तों के रह रहकर हवा में थिरकने के बावजूद हवा बरामदे तक नहीं आ रही थी। पैर की ओर पुआल की वनी लुआठी से मुलगता धुआ आगन और घर के चारा और फलकर मच्छरो को भगा रहा था। शाम के मच्छरा की गुनगुनाहट और सुनाई नहीं दे रही थी। बरामदे पर मैं दादी के साथ सोया था। वह सो गई थी। घर के अंदर दादा सोए थे। धीरे धीरे चारों ओर सनाटा सा छाने लगा था।

सुबह उठने पर आगन में अन्नका के पसाव करने के निशान और बरामदे में लुआठी की आकृति में जमी राख दिखाई पड़ती है। रोज आकर काम करने वाली नाईन सत्यवादी की मा के बुहारन की आवाज से मेरी नींद टूटती। नारियल के पड़ पर मैं उतरकर मेरे पास भूत आ जाएगा, इसी डर से मैं कभी कभी अंदर जाकर सो जाता क्योंकि मुझे दादी से अधिक दादा पर भरोसा था। एक बार सो जाय तो लाख पुकारने पर भी दादी उठेगी नहीं, पर दादा एक ही पुकार में जाग उठते थे। मेरे जागने के पहले ही दादी उठकर चली गई हाती। पर तब भी दादा घर के अंदर सोए होते। मुह में से पीक बह आया होता। छाती पर से पिछले दिन का लगाया चदन मिटा नहीं होता। मैं कूदकर बरामदे में खड़ा हो जाता और नारियल के पेड़ों की ओर ताकता। पिछली रात मैंने उनपर भूत, प्रेत, डायनो को देखा था। पर दिन के उजाले में हरे-हरे नारियलों के गुच्छे देखता। सिर्फ डाम ही नहीं, नारियल, खोपरा और नारियल के फूल भी देखूंगा। उड़ीसा के ब्राह्मण शासन' (ब्राह्मण गाव) में आगे पीछे नारियल के पड़ दिखाई पड़ते हैं। दूर से नारियल के पड़ों की कतार देख ब्राह्मण 'शासन' होने का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है उसके बाद

मैं आश्वस्त होकर अपना निरवयव म सगूना ।

उड़ीसा म पुरी जिले क तरहरिपुर सागन म कपिल मित्र का पर और वगीचे के बारे म यहाँ पहल बता रहा हू । वे मेर पिता क पिता, मेरे दादा थे । भरे हो ग सामानन तब वे यूँ ह। बले थे । मेरे दसत समय म सबकी आत्मा स भी तन हो जान तब उनका यही एक माताक-नवश था बडी-सी गान, छोटी आँसू, पोपना मुह, मझने बंद था गोरा गरीर, चौडा ललाट मुदित मस्तक क पीछे लटकनी छोटी । नाक म सम्मान गान आग्या म श्रुद्धि, ललाट पर अमरुप धनुभूतिया और पोपन मुह म न सतम होन वाली कहानियों का राजाना थे । अगूना और मामल हयनी पर पान मसलकर खात थे और मेर लिए कहानिया भरत थे । मैं जब इच्छा की है, उहानि कहानी सुनाई है । कभी नी क कहानी कहन न कर गए, जब गए या हार गए हा, यह मैं नही दसा । पोत के हिसाब स मैं उह अपने अनजात म क्या सतीप द रहा था, मुझ तही मातूम । चाहे कसी भी सुविधा असुविधा हो, मेर चाहन मात्र स ही उहानि कहानी सुनाद है ।

उनकी कहानियों के कारण मेरे लिए नारियल के पत्र पर भूत प्रत थे, जमीन के उस और सालरी पवत पर बई साधु सत थे और बडे पोसर न किननी ही राजकुमारिया के सगमरमरी मटल थे ।

एक रोज पाठशाला से लौटते समय मैं दादाजी से प्रश्न किया था— दादाजी, नारियल के अंदर पानी कस पहुँचता है ? उहाने जवाब म क्या कहा था याद नही है पर मुझे सतीप नही मित्ता था इतना जरूर था है । मुझे लगा वे ठग रहे हैं नाराज होकर मैं सडक की एक ओर हो गया, उनकी उगली की पकड़ छोड़कर । पर ऐसी घटा कभी कभार ही घटती । जब तक मैं गाव मे था मैंने उनकी उगली कभी भी नही छोडी । उनकी कहानी उनकी सानिध्यता से मुझे हमेशा आनंद मिला है । वे कहानी सुना एगे, मैं सुगूना । वे मुझे लाड प्यार करेंगे मैं उमे अट्टण करूंगा यही चिरनन सी रीति थी मेरे लिए । अब कभी कभार सोचता हू—हर रोज भाव भगिमा, लय अटूट रखत हुए उहाने मुझे जो कहानिया सुनाई थी उसीके प्रभाव से तो मैं कथाकार नही बन गया ? पर मैं उन जसा

काल्पित नहीं बन सका, समय के अभाव के कारण, कई उलझनों में फँसकर 'कहानी नहीं है' कहकर मैंन लोगो को लौटाया है, पर दादाजी न कभी भी 'कहानी नहीं है' कहकर मुझे लौटाया नहीं।

नरहरिपुर शासन में तीन ब्राह्मण परिवार थे और बाकी सब किसान। एक घर था नाई का, जिस घर से सत्यवादी की मा आकर हमारे यहाँ काम काज करती थी। गाय भर की आसपास की जमीन को पुराबो पहले पुरी के गजपति दिव्यसिंह देव ने मेरे दादा से दीक्षा ग्रहण करके दान किया था। पर दादा के जमाने में वह सारी जमीन हमारी नहीं रह गई थी। कपूर उड़ गया था। मेरे दादा के मामा भी एक प्रसिद्ध तंत्रिक थे। कई बार दादाजी से अपने वंश की तंत्रसिद्धि और भक्ति की ब्याएँ मैंने सुनी हैं। तंत्रिक के रूप में जयपुर में उनके मामा की प्रसिद्धि थी, एक दम दुर्दांत भूत या गह्वाराक्षस को किस तरह वे अनायाम वंश में बर सेंत थे, उनकी छाती तक लम्बी सफेद लट्टी सिद्धू का टीका, दादाजी की कथन शैली के कारण मेरे लिए अब भी आकर्षणीय बनी हुई हैं। मेरे होगा सभा लने तक हमारे परिवार में तंत्राभ्यास नहीं रह गया था सिर्फ भक्ति ही रह गई थी। पहले हर रोज दादाजी तंत्रपीठ वाणपुर की भगवती के दशनाथ जाते थे, वह भी बंद हो चुका था। घर पर दुर्गा माता की मूर्ति अब और नहीं थी। वे सिर्फ अनंतस्वामी के दशन करन जाते थे। त्रिपुण्णमूर्ति, अनंतस्वामी, हमारे मुहल्ले से तीन मुहल्ले छोड़ के वैष्णव मठ में अधिष्ठित थे। तब तक दादाजी को कोई सतान नहीं थी। उनका बाल विवाह हुआ था। जितनी सतान होती, सब शीघ्र मर जाती। दादाजी त उसी दुःख से हो या धान के व्यापार में जहाज डूब जाने के कारण, अफीम का आसरा लिया। उस समय उड़ीसा में सामंत चंद्रशेखर प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पंडित थे। गति और फलित दोनों में उनका सुनाम था। पुत्रप्राप्ति होगी या नहीं, उन्हें पूछने के लिए वे खडपाड़ा गए। उनकी जन्मपत्नी देखकर उन्होंने बताया, एक लग्न के पंचम में पुत्रकारक वहस्पति ने रहकर पुत्र भाव को नष्ट कर दिया है इसलिए पुत्र प्राप्ति नहीं होगी। पर नारायण प्रसन्न हो तो क्या असंभव हो सकता है? इसलिए उन्होंने नारायण को प्रसन्न करने के लिए अष्टाक्षरी मंत्र

पाया था। मैंने सूप भावान और देवी की पूजा कर सतान पाई है। वैशाख कृष्ण पक्ष की एकादशी थी, जिम दिन तू जमा। ग्रहापुर के विख्यात ठाकुरानी (देवी) मेले के भ्रमर पर देविमा हमारे घर पधारी थी और जब भोग लगाया जा रहा था, तब मुझे प्रभव पीडा हुई। दास, घटा, तुरही, हूलहूली के बीच तू भूमिष्ट। तेर दादाजी दादी, पिताजी सब मुझ बाभ कहकर कोमत थे। कहा करते कि मैं मा बनूगी ही नहीं, यहा तक कि तरे पितानी की दूसरी शादी की बात भी तय हो चुकी थी। इसी बीच वरामदे पर मैं रात बिताई है। किवाड बंद कर तरे पिताजी अदर सो जाएगे और सुबह उठकर बटव। कभी-कभी तो आधी रात को मन करता सालेरी पहाड की ओर चली जाऊ। तू मेरी आँखो का तारा है मेरी गोद भरकर तूने मुझे बाभ कहलान मे बचाया है। मैं तुझे सूपदेव की पूजा कर पाया है। तू बडा आदमी बनना।

मा की बातें अच्छी लगती थी, गर्मिया के दिनों मे वह चदन-नी शीतलता दती और सर्दियो मे आग की तरह गर्मी। मा की तरफदारी कर मैं पिताजी दादाजी और दादी पर विगडता था। पर वे मुझे इतना प्यार करत थे कि उनपर विगडने के बाद मुझे और क्या करना चाहिए, सोच नहीं पाता था। अत मा के पास मे उठ जाने के बाद सब कुछ भुला देना था। नींद लगने पर अपने आप दादा और दादी के पास चला आता था।

मैं गाव के आसपास के इलाकों मे काफी घूमा करता। सुबह खुद भात खाकर, गाय और गोपाल बालको के साथ सालिया नदी के पान बाहर गडियो तक चला जाता भसो की चौडी पीठ पर बैठ या लेटकर पहाड की ओर जहा ऋषि मुनि होने की वान लोग बताया करत हैं एक-एक देखता रहता। कहते हैं सालेरी पहाड की चौटी पर से श्रीमदिर (पुरी का जगन्नाथ मदिर) दिखता है, पतितपावन पताका दिखाई देती है। कहते हैं सालेरी वनोपधियो से भरपूर है। एक बार एक लकडहारे ने लकडी काटते समय कुल्हाडे से पैर काट लिया। पीडा से कराहते हुए रेंगता रेंगता उतरा। उतरते समय उसके आगे जो भी पत्ता पडता, उसे तोड या उठा लेता और घाव पर मल देता। नीचे उतरकर वह दग रह

गया। सिर्फ खून बहना ही बंद नहीं हो गया, उसका अघकटा पैर भी जुड़ गया था और बटने का निशान तक गायब था। मालेरी को मैं रामायण में वर्णित गंधमादन सोचता था और उसे पेड़ के नीचे से या मस की पीठ से देखता था। मन ही मन सक्ल्य करता कि एक दिन उसपर ज़रूर चढ़ूंगा। स्कूल जाकर पहाड़ा माद करने के बजाय वहां से सालेरी की और दान में मुझे ज्यादा खुशी मिलती थी। सूर्यदेव और देवी के प्रसाद से जन्मनेवाले व्यक्ति के लिए इसमें अच्छा क्या बाम हो सकता है, यह मेरी कल्पना से परे था।

स्कूल न जाकर भेस की पीठ पर उस तरह घूमते समय बहुधा लकड़ी लाने जगल जाा वाली लडकिया दिख जाती। घापम में बातें करती हुई हसती हुई। पहाड़ की धार उनका चलना और शाम को सिर पर लकड़ी का बोझ लादे लौटना, मुझे आरप्यक गीत के ताल-लय सा लगता था। पर मैं उसे समझ नहीं पाता था। वे युवतिया मुझे कई जगहों पर दिखने लगीं। बड़े तालाब के घाट पर, मुहरले की सड़क पर, खेत में, अमराई में

जो आखें सातिया नदी की क्षिप्रता, सालेरी की उच्चता, वास के जगल की गहराई, आकाश की व्याप्ति को निहारती थी, व प्रकृति के इन गुणों को, गाव की इन लडकियों में देखने लगी। मेरे मन को जानकर साथी लडके भी उन्हें दूर से दिखाकर उनका परिचय देते हुए उनका झूटा-मच्चा इतिहास बताने लगे। मेरे एक और साथी ने मुझे और आगे बढ़ाने की कोशिश में मुझे याद दिलाया कि मेरा नाम 'कृष्ण' है। उस समय शायद मेरे नाम 'कृष्ण' के साथ प्रसाद नहीं जुड़ा था। भारत में अत्यंत अथस्रोतक इस नाम को साथक बनाने के लिए मैं दोपहर में छिपकर दूध पीने लगा भक्लन चुराकर खाने लगा और एक दिन सान बेदो तालाब में सूर्य के छोड़ो के पानी पीते समय औरतो के घाट के पास के पड पर जा रहा। इन सत्र कार्यों में मेरी तीव्रता और बढ गई जब मुझे मा की भालमारी में पुराण, उपन्यास, कहानी की किताबों के नीचे से अघानक 'काम विज्ञान' और 'विवाह विज्ञान' नाम की दो किताबें मिलीं।

मा दहेज के रूप में, वैसे देखा जाय, तो कुछ भी नहीं लाई थी। विवाह के तुरत बाद पिताजी स्टूडेंट्स स्टोर की कटक शाखा की ब्यवस्था करन

चले गए। मा स्टूडेंट्स स्टोर के नागीदार तथा मैनेजर लामोदर रथ की बड़ी लडपैी की हैनियत स गाडी भर पुस्तकें लाई थीं। वे सारी पुस्तकें उनकी आलमारी में बंद थीं। दहान में रहते समय के लम्बे दिना का मैन उन आलमारियों के महार बिताया था। बण गिन्ना और दाल्बान पा लेने के बाद मैन अठारह पुराणा की पढ छाला। मुड अथवा अपहरण का प्रमग आना तो दहुन थाव स पढता था और दाशनिक या नीतिगिशा वाले प्रमगा क पने ऐसे ही उलट देता। नक का बणन तो कभी अच्छा नही लगता था। पुराण पढन में मी इतना तल्लीन हो जाता था कि खेल कूद, साथी मगी आदि की बातें तब भूल जाता था। पुराणा की पढकर एक बार मेर मन में एक सवाल उठा—शिव, दुगा, विष्णु आदि में कडे कौन है? इस सवाल के निराकरण के निठ सोचा, एक दिन सालेरा पर जाकर विष्णु की आराधना करुंगा। इसी बीच इन पुराणा क बीच न उन विद्वाना का आविष्कार किया, जिन्हें पने की नाशनिगी को मनाही थी जैसे दादाजी द्वारा कही गई कहानियों के रागुमार को सब कभरो की कजी दवर किसी एक ग्यान कभरे के अदर घुसना से मना कर दिग जाता है। उन विद्वानो के चित्र देखते ही मैं जान गया कि घर के अदर अकेले में ही घुमना चाहिए। सबके रहते नही। और मीने वैसे ही किया भी। घर के इधर-उधर मुनसान कोनों में घना जाता जब मव रोग सौ जाते, और इस तरह उह आघोपात पढ गया, और उमीके बाद मुभम उदभ्रातता दिखाई देने लगी, जिसके कारण साथी लडको से बातें मुनना अधिक अच्छा लगने लगा मिर पर लकडी के भार लाद आती उन लडकियों को देखने की अधिक इच्छा हुई। धीरे धीरे पाठशाला में अनुपस्थिति होने लगी, शरीर और मन में एक अदभुत ज्वाला भटकन लगी थी।

मैं दि 1-दोपहर की धूप में इधर उधर घूमराई सालेरी के आसपास की जगहो में आसपास के गावो में भटकने लगा। और आश्चर्य की बात यह है कि जब से मीने इस तरह का भटकना शुरू किया, तब से वे लडकिया जिन्हें मैं देखा करता था मांगी किसी जादुई छडी के घुमाने की तरह

गायब हो गई। 'सामान्त' के नाती की आखा मे गाव की बूढ़िया ने पता नही क्या देखा और पता नही कैसे-कैसे अफवाहे फलाइ कि व सारी निजन जगह नारीगूय हो गई। घूष म भटक भटककर निराश हो रोज घर लौट आने के कुछ दिन बाद में भयावन सपन तक देखन लगा— असस्य विषघर साप, भूत प्रेत, देवी दबता। मैं कई बार घूष मे उडने के सपने भी देखता। पैदल चलत चलत इच्छा होती उड जाऊ और मैं उडने लग जाता मैं हाय हिना हिनाकर उड रहा हू और नीचे जगल, जमीन, पहाड सब कुछ रह गया है मुझमे पता नही क्या देखकर एक दिन दादाजी न एक ऐसी सुंदर स्त्री की कहानी कही जिने लगातार आठ-दस दिन तक सपने मे कोई देखे तो अपन आप कमजोर होकर मर जाएगा। इससे मेरा भय और अधिक हो गया।

इसी तरह की अशांति के चलते म नाटक और कविताए लिखने लगा। एक हस्तलिखित पत्रिका भी निकाली। मेरी कविताओं को गाव के एक बुजुग कवि सगाधित कर देते थे। अपने लिखित नाटकों की गाव के लडकों को बुलाकर मैं घर पर मचस्य करता था। घर से मा की साडिया ले आना, लालटेन के उजाले म वे नाटक खेले जात। फिर धीरे धीरे उन्हें देखा वालो की सख्या बडने लगी। उही दगको मे एक दिन उही लडकियो म से दो-तीन को देख मैं खुश हो गया जिह इससे पहले हर जगह डूडा करता था, हार गया था खोज कर।

पर इसके बाद मैं और अधिक दिन गाव म न रह सका। मेरा आकरण, मेरा घूमना फिरना, पढाई म डिलाई मेरे गारीरिक और मानसिक परिचतना को हमारी पाठशाला के अनुभवी प्रधानाध्यापक ने पता नही कैसे भापा और पिताजी को पत्र दिया था। पता नही उस पत्र मे क्या लिखा था उन्होन। पर एक दिन बालुगाव स्टेशन से पठान गाडावान ने गाडी लाकर घर के सामन खडी की और उसपर से पिताजी उतरे।

नाटक बंद हो गए। पत्रिका बंद हो गई। अमराई मे इधर उधर भटकना बंद हो गया। मा से लक्ष्मी जणाण सुनना बंद। दादाजी की छाती से बदन की महक और दादी की हलदी लगी देह की सुगंध को उनके पास सोकर सूघने का मौका फिर कभी नही मिला। गाडी स उतरकर

पिताजी ने मुझे कटक साथ ले जाने का प्रस्ताव रखा। मैं कटक घूमने जा रहा हूँ यह सोचकर खुशी से फूला न समाया। गाव में रहते हुए भी मैं कल्पना में कटक कई बार ही आया था, इसलिए जब कटक बनने की संभावनाएँ सच होने की आशंका में खुश हो रहा था। यद्यपि दादाजी, दादीजी और माँ को सही बात का पता था, उनके चेहरे पर खुशी के बदले भावूकी थी पर मैं तो सोच रहा था कि कटक गाव की तरह घूँघर का जगल नहीं होगा। वहाँ केवड़े केतकी की बाड़ नहीं होगी। लालटेन और दीया घघरे को अधिक गहरा नहीं करेंगे। मच्छरा को खदेड़ने के लिए लुप्राठी का घुघ्रा नहीं होगा और न उस घुए का अत्याचार सहन करना होगा। इन सबको लेकर मेरे मन में कोई संदेह न था। चूँकि कटक मेरे लिए एक नया शहर था अतः मैं कुछ अधिक उत्सावला हो रहा था। माँ, दादाजी और दादी माँ के चेहरे मानो मुझे सतक करा रहे थे, पता नहीं किसलिए। मैं उम्र में छोटा था, फिर भी मन ही मन मैंने तय कर लिया था कि रौंढगा नहीं और उसी संकल्प को लेकर मैं गाड़ी पर चढ़ा था।

धीरे धीरे नरहरिपुर शासन बड़ा तालाब, बड़ पाटणा, माध्यमिक स्कूल, बाणपुर सब पीछे छूटने गए और हम आकर बालुगाव में उतरे। माछ गाड़ी में चढ़े। उसी ट्रेन से चिलिका झील की मछलियाँ कलकत्ता भेजी जाती हैं। बरामदे पर लड़ी दादी माँ, सड़क पर खड़े दादाजी और मेरे सारे पार-दोस्ता की पादों मुझे सताती रही थी। पता नहीं माँ उस समय कहा थी, शायद मेरे लिए सूर्य भगवान के आगे मिर झुकाएँ प्रार्थना कर रही होगी। गाड़ी में बैठकर खिड़की से मैं बाहर देखा। बालुगाव धीरे धीरे पीछे छूटता जा रहा था और उसीके साथ माँ मेरा हृदय दुःख से भरता जा रहा था। पर न रोने के संकल्प ने मुझे मयत कर रखा था। अतः मैं देखा रेल एक पटरी पर से किस तरह दूसरी पटरी पर चली जाती है और फिसलती नहीं। मैंने पिताजी से कारण पूछा। पिताजी मुझे वही बात समझाने लगे। गाड़ी का डब्बा लीगो से खचाखच भरा था। बीड़ी और सिगरेट के घुए में आगें जल रही थीं। डब्बे में उजाला नहीं था और उसपर मछली की वृत्तें नाक पटी जा रही थीं। मैं पिताजी का उत्तर सुनते-सुनते पफककर रो पड़ा। पास बैठे

यात्री जो कुछ क्षण पहले मेरे मवाल में मुझे बुद्धिमान समझ रहे थे, मुझे रोते देख पिताजी से कई बातें पूछने लगे। गाव की सड़क पर बहुत पहले जो होना चाहिए था, वही अब यहाँ हो रहा है, शायद ऐसा ही कुछ बताया था पिताजी ने।

बटक के बालू बाजार चौराह पर एक दुमजिले मकान की ऊपरी मजिल की एक कोठरी में रहने की व्यवस्था थी और नीचे स्टूडेंट्स स्टोर (प्रकाशा संस्थान) की दुकान थी। एक शाया बहापुत्र में भी थी, नानाजी की देखरेख में। बालू बाजार में सिर्फ विप्लव के द्र था। जिधर देखता, किताबें ही किताबें नरी थी। इतनी सारी किताबें एक साथ देखकर खुशी से पागल-सा हो गया। जिस दिन पहुँचा, उसी दिन साचन लगा कि कब रात कटे, दिन हो और मैं पढ़ना शुरू करूँ और उन्नीसे रात भर नीद नहीं आई। भोर से ही मारवाडी महिलाओं के चप्पल घसीटते हुए चलन की आवाज, उनकी भापा में गीत गान चलना, चौगाहे पर खड़े होकर बातचीत का शोर तथा पास की मसजिद से तुरही की आवाज और अजान की पुकार, रास्ते पर कबूतर और कौवा के दान चुगते झुंड और रास्ते के दूसरी ओर हलवाई की दुकान में बतन माजन की आवाज—इन सबने मिलकर बटक में उन पहली सुबह को भोर से ही सुंदर बनाया और छत पर जाकर सूर्य पर फँके अनगिनत अक्षतों की भाँति उड़ रहे कबूतरों को देखकर बटक के लिए प्यार हाँ आया था।

अब की बार पुराण नहीं—मैंने कहानी, उपन्यास और कविताएँ पढ़ना शुरू किया। प्यारे मोहन अकादमी की पाचवी कक्षा में मुझे दाखिल किया गया था। महा प्रधान शिक्षक ने मेरे चेहरों की ओर ताकते ही माँ द्वारा कही मेरे भविष्य की गणना दुहराई थी। उस समय सिर्फ मैं ही नहीं, पिताजी भी थे। 'इस बच्चे के चेहरे से ही पता चलता है कि यह आगे चलकर बहुत बड़ा आदमी बनेगा पर मैं उस समय किसीसे निदान-प्रणसा ग्रहण करने के मूड में न था। स्टूडेंट्स स्टोर में रखी असरय किताबें पुनार रही थी। स्कूल की पढाई में बहुत खुश न था मैं। स्कूल में मुझे जेल जैसा लगता था। घर लौटने पर ही पढाई शुरू होती। रात को बल्ब के उजाले में पढ़ना और सुबह किसीके उठने के पहले छत पर जाकर

पढ़न बैठ जाता। अतः मे ऐसा हुआ कि मैंने दुकान की करीब सारी की सारी किताबें पढ़ डाली, उस समय मुझे 'किताब पगला' के रूप में बाबू बाजार के दूसरे दुकानदार भी जान गए थे। मैं उनकी दुकानों से किताबें ले आता। वं भरे लिए सारी सुविधाएँ जुटाते। कभी कभी मुझे आराम मिले इसलिए चटाई और तकिए तक की व्यवस्था की। किताबों के अक्षरों के बीच गाव की सागी स्मृतियाँ खो गईं। मुझे नये नये माथी भी मिलने लगे। स्कूल के सहपाठी अथवा दोस्त नहीं—उड़ीसा के सब साहित्यकार अपने साहित्य के जरिये धीरे धीरे दोस्त बनने लगे। उस समय स्टूडेंट्स स्टोर में उड़ीसा के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों का नियमित आना जाना था। श्री कालिन्दी चरण पाणिग्रही, श्री मायाधर मानसिंह, श्री गोदावरीश मिश्र, श्री राधामोहन गङ्गायक आदि उस समय के प्रख्यात कवि लेखक उपन्यासकार आते उनके पास बैठकर बातें करने की उत्कण्ठा होती। वे मुझे अति परिचित दोस्त बन लगे। पर बच्चा ममभरकर पिताजी मुझे ऊपर भेज दते और वे खुद उनके साथ बातों में मग्न हो जाते, चाय नाश्ता, पान सिगरेट के दौर चलते रहते। मैं मन मसोसे ऊपर चला जाता और अपनी किताबों की दुनिया में सब कुछ भुना देना की कोशिश करता। नहीं तो कभी कभी गाव की भूली भटकी यादा की स्मृति के झरोखे से घुसना और उनका सोधी सोंधी महक में खो जाता। कई बार मुझे विस्मय सा लगता कि ये मुझे अपना साथी क्यों नहीं बना रहे हैं। मेरी प्रतिभा को ये लिपल-पढ़ने वाले लोग और मेरे पिताजी तक भी क्यों नहीं देख रहे हैं? मैं उन लोगों के साथ साथ पिताजी पर भी नाराज हो जाता—मन ही मन उनकी इस तरह की लापरवाही के कारण।

इसी बीच उड़ीसा की एक विशिष्ट साहित्यिक मस्था 'कलिंग भारती' के संपक मयाया। 'कलिंग भारती' और उत्कल छात्र साहित्य समाज के सभापति श्री विच्छेद चरण पट्टनायक उड़ीसा के प्राचीन काव्य के विद्वान ही नहीं थे, वरन् इस मत के दृढ़ ममधक भी थे कि उस काव्य-परंपरा का अर्थ भी अनुसरण होना चाहिए। उनकी असाधारण प्रतिभा से आकर्षित होकर विद्यार्थी उत्कल छात्र समाज के सदस्य बन जाते। उड़िया के आधुनिक साहित्य की कठोर आलोचना करना, प्राचीन

पारपरिक रीति से काव्य कविताएँ लिखना, उपेन्द्र भज को कवि-सम्राट् घोषित करना, उम सस्था का प्रमुख काय था। सभाघ्रा में नई पीढी के कवियाँ को 'यूनतम दर्शाना भी इम समाज की काय सूची के अतगत था। इसी नमाज के मन्त्री एक दिन स्थानीय कॉलेजियट स्कूल में उडिया साहित्य के सम्बन्ध में भाषण देने आए। उस समय में पी० एम० एकेडेमी छाड कॉलेजियट स्कूल की आठवी कक्षा में पढ रहा था। अच्छे भाषण देने वाला के प्रति मुझमें शुरू से ही दुःखता रही है। उनके कहने की शैली और उग्र उडिया जातीयता न मुझे आकृष्ट किया और मैं भी समाज का सदस्य हो गया था।

मैं उन दिनों विच्छद बाबू की प्रेरणा से छद और रागो के आघार पर कुछेक कविताएँ लिखी थी, यहा तब कि प्राचीन ढग से कविताएँ लिखन के लिए एक सुंदर काव्य-नायिका की आवश्यकता पर भी विचार करन लगा। स्कूल में वैसी कोई साथ पढने वाली नहीं थी। हाई स्कूल में हाफ पट' पहनन वाले आठवी कक्षा के एक छात्र के लिए प्रेमिका मिलना भी कठिन था। स्कूल जाते समय एक सम्माननीय धगाली भद्र व्यक्ति की बेटी को नस्याभ्यास करते देख उसमें अपनी काव्य-नायिका के सारे लक्षण देख उसीको नायिका मानकर भज का अनुकरण करते हुए कविताघ्रा में काफी पर काफी भरने लगा। मेरी कविताओं के झलावा मेरी भाषण कला और उग्र मनोभान को विच्छद बाबू से सराहना मिलती थी। सभाघ्रा में किसीकी आलोचना की आवश्यकता का अनुभव करते ही वे मुझे अस्त्र बना लेते। मेरे उन कार्यों के बारे में पिताजी को पता था। फिर भी, उनसे मुझे पूर्ण स्वाधीनता मिली थी। स्टूडेंट्स स्टोस उन दिनों आधुनिक उडिया साहित्य का प्रधान पृष्ठपोषक था। विच्छद बाबू और उनका समाज आधुनिक साहित्य का विरोध करते थे। मैं विच्छद बाबू के गुट का सदस्य बन गया था।

पर एक दिन मैं सीमा लायी। श्रीरामचद्र भवन (उत्कल साहित्य समाज का सभाकक्ष) में प्रसंगत कवि राधानाथ राय के सुपुत्र निवधकार शशिभूषण की पंढी पूर्ति मनाई जा रही थी। सभा में शशिभूषण की

प्रशंसा के पुल बांधे गए। हमारे गांव बाणपुर के नेता पुण्याला गोपबधु के शिष्य विख्यात आधुनिक कवि पंडित गोदावरीश मिश्र ने अपने भाषण में दाशिमूषण की प्रशंसा की। उन्होंने उह सूय बतलाया और सुभाव दिमाकि उनके जीवन के साथबाल में उनकी साहित्यिक कृतियों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। और इस सदन में बहुत कुछ कहा। वे जब भाषण दे रहे थे, तब विच्छद बाबू उनकी बातों का खटन करने की मुझे प्रोत्साहित करते रहे। पंडितजी के बाद मैं मंच पर आया। दाशिमूषण 'सूय' नहीं हैं, वे 'मालोक' हैं इसलिए उनके लिए शाम ही नहीं है रात हीन पर वे चंद्रमा और तारों के जरिये ससार को मालोकित करेंगे, पंडित गोदावरीश उह सूय मान न मालूम किस तरह उलझन में आ फसे हैं। आदि आदि कहा। जब सभास्यल तालियों से गूज रहा था, तब ही पंडित गोदावरीश सभास्यल छाड़कर चले गए। हम विजयी हुए, यहकर विच्छद बाबू न मभा के पदचात मेरी पीठ घपघपाई। गुंग होकर जब मैं घर लौटा, पिताजी ने मुझे पास बुलाया। यह अस्वाभाविक था। मैं दकित मन दुकान के अंदर गया। पिताजी की मेज पर प्रूफ की कई पाइलें थीं, कई छपी हुई पुस्तकें थीं दो-तीन कलम पेसिनें और दो-तीन पेपरवेट टबल पर करीने से सजे रखे थे। दीवार से सटकर किताबों की रेकें लगी थीं जिनमें किताबों के बडल ठुसे पडे थे। दुकान का बाहरी दरवाजा बंद था। रवि वार होने के कारण और कोई कर्मचारी वहा न था। सिफ वे टेबललैम्प के उजाले में बैठे थे।

—किधर गया था? जाते ही अपनी सहज मुद्रा से तनिक गभीर होकर पूछा। गोदावरीश बाबू की आलोचना वाले प्रसंग को छोड़कर अन्य सारी बातें कह डाली। बाद में मैं वहा गोदावरीश बाबू के बारे में जो कहा था वह सब पिताजी ने जोड़ दिया। पिताजी गोदावरीश बाबू का आदर करते थे—मैं अच्छी तरह इस तथ्य से परिचित था। पिताजी ने उमी मुद्रा में तनिक रककर पूछा—भविष्य में तू क्या बनना चाहता है? उसीके अनुसार अब से तेरे कार्यक्रम को निश्चित करने की जरूरत है। एक बड़ा लेखक बनकर नई-नई बातें सरजने की इच्छा है तुममें या बक्ता बनकर गैर जिम्मेदार बात उछालकर वाहवाही लूने की इच्छा है, जैसा

कि तूने आज पढितजी के बार में क्या है ? वे और भी कई बातें कह गए । उन बातों में साधना, तपस्या करने की चुनौती थी । उनमें 'छात्र साहित्य समाज' के साथ मेरे सम्बन्धों पर पुनर्विचार का अनुरोध था, लेकिन बनन बाती बात पर गभीरता से सोचने का संकेत था । मैं चुपचाप उठकर ऊपर चला आया । पिताजी की गालियों और बोझिल उपदेशों के बाद गौणवरीय बाबू न धाकर पीठ सहलाते हुए समझाया कि मुझे लेखन बनना चाहिए तब अरुण जी कुछ हल्का हुआ । धीरे से कागज, कलम लेकर मैंने रिच्छन्द बाबू के पास इस्तीफा लिखकर भेज दिया ।

बूती ने एक बार कहा था—हे वृष्ण ! तुम मुझे बार-बार दुःख देना ! सुख के बीच मैं तुम्हें भूल जाऊँगी, दुःख ही मुझे तुम्हारी याद आएगी । दुःख केवल ईश्वरीय चेतना के लिए नहीं, साहित्यिक चेतना, दार्शनिक चेतना, जीवन की सारी गहरी अनुभूतियों के लिए राजद्वार की तरह है । 1949 ई० तक दुःख अथवा यत्रणा का अनुभव मैंने प्रायः नहीं ही किया था । मुझे केन्द्रित कर दादाजी, पिताजी मा अथवा दादी को सुख-दुःख का अनुभव हुआ हो, मुझे पता नहीं । उनके सुख दुःख से मैं लापरवाह था और मुझे लगता था जैसे सारी घटती मुझे केन्द्रित कर धूमती है और दुनिया की बाकी सारी चीजें गौण हैं । सौ-सौ बित्तों पड़ लेने के बावजूद सत्कार के किसी सत्य ने मेरे चम को भेद कर मन और आत्मा को छुआ हो, मुझे पता नहीं । इसीलिए शायद एक दूर के रिश्ते की बहन जब समुराल जा रही थी, वह रो रही थी, तो मैं हस पड़ा था । पिताजी के रात में देव-दशन कर लौटते समय मेरी ही उम्र की फूफी किवाड़ खोलने आती, अंधेरे में मैं उसे चौंका कर डरा देता था । चाकर रसोइया सो जाता तो उसके मुह में गुडाखू (गुड तवाखू से बनी दात घिसने की लई जैसा) भर देता था । विचित्र सी हल्की मनोवृत्ति लेकर मैं यह सब देखता था । परिणति के प्रति दूसरों की भावना के प्रति मुझमें सचेतनता नहीं थी । गाली, प्रशंसा, अनुभूति सुख-दुःख का एक अर्थ पहलू भी है, इसकी मेरे अंदर कोई कल्पना न थी । जो मैं देखता था वही मेरे लिए दृश्य था जितना सुनता था, वही मेरे लिए श्रव्य था, और जिसे छूता था वही मेरे लिए स्पर्श बन जाते थे । उसी तरह अगर अत्र तक मेरा जीवन-प्रवाह गति

करता होता तो पता नहीं आज मैं बिघर गया होता। आज उसका अनुमान भी सिहरा देता है। कोई एक मेरे लिए दूसरी तरह से भी सोचता था।

एक दिन जगनाथ बल्लभ गली से होकर मैं अपने मामा के यहाँ जा रहा था जो कि स्टूडेंट्स स्टोस में काम करते थे। कोई मेरे पीछे से आया और तर्ज़ी से मुझे काटकर आगे बढ़ गया। उसका उस तरह से जाना मेरे प्रति एक चैलेंज था। मैं भी उसके पीछे ही लिया। पर थोड़ी ही दूर आगे बढ़ा होऊंगा कि किनारे की दुमजिली इमारत से किसीने छडा फेंकी जो आकर मेरी बाइ आस ने टकराई। चीखकर साइकिल से उतर गया। पहले तो मैं सोचा कि मुझे उतारने के लिए ही आगे जा रहा साइकिल वाते ने कुछ फेंका है। पर ऐसा न था, वह काफी आगे निकल चुका था और मैं उसके पीछे पीछे उसे पीछे छोड़ जाने की कोशिश में था, यह उस पता न था। एक हाथ से चोट लगी आस को बढ़ करके मैं आसपास की इमारतों को देखा। ऊपर कोई भी दिखाई नहीं दिया। सड़क पर घड़ी भी न थी। फुटपाथ भी उस समय सुनमान थी। सड़क के दोनों ओर ज़्यादातर जगह में कटीले भांड थे। मैं उसी तरह आस दबाए मामाजा के घर तक गया और उहाँ खबर दे घर वापस आ गया। शाम को 'अदाज' देखने जाना था। फिल्म देखने किस तरह जाऊंगा, यही चिंता थी। सोच रहा था, आस वा दद चला जाएगा और कोई खास परेशानी न होगी। पर मेडिकन जाकर आस में दवा डाल आने के बाद सिनेमा जाने का तो सवाल ही नहीं रहा। पीडा बढ़ती गई। मैं अत में सो गया और सोचने लगा कि बल ठीक होने पर देखा जाएगा। डाक्टर ने बताया था कि मेरी तबदीर अच्छी थी जो बाटा आस की पुतली के सफ़ेद भाग में लगा था, काय में नहीं बरना तो आस ही खत्म हो जाती।

गायद किसीके भाग्यवान होने के साथ उसके दुख दद का कोई खास सम्बन्ध नहीं है क्योंकि मेरी यत्रणा कम नहीं हुई। मैं आस खोलकर देख न सका। पुतली हिलते ही उसमें डाली के गिरने जैसी अथवा चाबुक सटकार जान जैसी पीडा होती और चीखकर मैं आस बढ़ कर लेने को बाध्य हो जाता था। उस दिन नहीं, दूसरे, तीसरे, चौथे दिन भी नहीं, दो

महीन तक रोज बढ अस्पताल म जावर दवा डलवान के बावजूद आस ठीक नही हुई । मुझम डर और शकाए बढती गई । धीरे धीरे कालेज म 'प्राक्नी' बढ होती गई और दोस्ता न भी क्रमश आना जाना घटा दिया । मैं शंयागत बन चुका था और अदाज' के राजकपूर नगिस कटक कभी के छा चुके थे । एक आस की पीडा, दूसरी आस मे फलने लगी । घर पर सब चिन्तित हो गए । गाव स मा आ गई थी, मा की गोद मे मेरी पीडा और भी दढ गई थी । मूयदेव और देवी माता के प्रसाद से एक काना लडका, मेरा भा बनना चीखकर कहू । गाव की याद अलग से उभर आती थी रह रहकर । मा की चात्त म गाव की मिट्टी, बाता म पक्षी का बनरव, साडी मे सानबदी पोखर की कुई की खुशबू मानो आ गई थी ।

सिफ किताब ही नही उडती चिडिया, सिलते फून बहती नदी, ऋतु और दिनों के अनुसार बदलत आकाश के रूप को भी मैं अब और न देख पाऊंगा—यह सोच-सोचकर बिस्तर पर पडा पडा रोता सुबकता रहता । अपन कमरे के अदर बिस्तर पर पडे पडे घर के कोलाहल, छोटे भाई-बहना के हसी खेल, सडक पर गुजरते रिक्शेगाडी और ट्रका की आवाज, सुन सुन मेरी व्याकुलता बढती जा रही थी । मुझे छोडकर दुनिया अपनी राह चल सकती है दूसरे खूब हस सकते हैं, खेल सकते है, इस उपलधि मे वार-वार मेरा हृदय भर आता था । उसी समय मेरी बढ आखा के अदर एक और आख खुलन लगी—भय, रोना, कल्पना सब मिलकर जैस उस आख की पखडी को खोलने को मजबूर कर रहे थे—'मैं कौन हू ?' 'मैं मर जाऊ तो भी क्या हज है ?' 'ईश्वर हैं भी या नही ?' आदि मवाल मैं अपन आपस पूछ रहा था और उनके जवाब पान की कागिग कर रहा था ।

उन सवाला के जवाब ढूढते समय एक दिन मुझे विशाखापट्टनम चलने की तैयारी करन का आदेश मिला—पिताजी स । आखो के प्रसिद्ध उजिया डाक्टर सत्यनारायण गनायत ने वहा खूब नाम कमाया था । उहाने मेरे इलाज का भार लिया था ।

डाक्टर गनायत की चिकित्सा, जगह बदलने का प्रभाव, समुद्र तट के अस्पताल की सुव्यवस्था और मेरे दढ सकत्प और उसकी इच्छा स मेरी

करता होता ता पता नहीं आज मैं बिधर गया होता। आज उस अनुमान भी सिहरा देता है। कोई एक मेरे लिए दूसरी तरह से सोचता था।

एक दिन जगन्नाथ बल्लभ गली से होकर मैं अपने मामा के या रहा था जो कि स्टूडेंट्स स्टोस में काम करते थे। कोई मेरे पीछे र और तर्जों से मुझे काटकर आगे बढ़ गया। उसका उस तरह मेरे प्रति एक 'चलेंज' था। मैं भी उसके पीछे हो लिया। पर दूर आगे बढ़ा होकर कि किनारे की दुमजिली इमारत से कि फेंकी जो आकर मेरी वाइ ब्रास में टकराई। चीखकर र उतर गया। पहले तो मैं सोचा कि मुझे उतारने के लिए ही साइकिल बाते ने कुछ फेंका है। पर ऐसा न था, वह काफी चुका था और मैं उसके पीछे पीछे उसे पीछे छोड़ जाने की यह उमे पता न था। एक हाथ से चोट लगी ब्रास व आसपास की इमारतों को देखा। ऊपर कोई भी दिरा सड़क पर घड़ी भी न थी। फुटपाथ भी उस समय सुनम दोनों और ज्यादातर जगह में कटीले झाड़ थे। मैं उर मामाजी के घर तक गया और उहे खबर दे घर वापस 'अदाज' देखने जाना था। फिल्म देखन किस तरह जा सोच रहा था, ब्रास का दद चला जाएगा और कोई र पर मेडिकन जाकर ब्रास में दवा डाल आने के बाद सवाल ही नहीं रहा। पीडा बढ़ती गई। मैं अत सथा कि कत्र ठीक होन पर देला जाएगा। डाक तकदीर अच्छी थी जो काटा ब्रास की पुतली के कपि में नहीं बरना तो ब्रास ही खत्म हो जाती।

शायद किसीके भाग्यवान होने के साथ खाम सम्बन्ध नहीं है क्योंकि मेरी यत्रणा कम देप न सका। पुतली हिलत ही उसमें डाली सटवार जाने जैसी पीडा होती और चीखव बाध्य हो जाता था। उस दिन नहीं, दूसरे

राजेन्द्र यादव

बस, उस सामने घाली झाड़ी तक ही तो पहुँचना है

उसे लगता है, इस बार वह काफी सुरक्षित जगह आ गया है। इस घेत को पार करत ही पगडंडी और फिर झाड़ियों का झुरमुट वहीं बैठ-बर वह कुछ देर मुस्ताएगा, तभी देखेगा कि गोसियों कि खराचें, स्पलटस या टूटते मकानों के डंट पत्थर शरीर में क्या कहा लगे है? अभी तक अपने बचे रहने पर आश्चर्य होता है। शायद कोई भी चीज किसी सतरनाक जगह नहीं लगी है, वरना वह तो वहीं ढेर हो जाता। उसन फिल्म, टेलीविजन में देखा है, उपयास कहानियों में पडा है और सुन-समझकर ऐसा लगता है, जैसे उस सबको आसा और चेतना से भोग भा चुका है। गोली या फटते गोलों के टुकडे उछलते हैं, धूल मिट्टी या दूसरी चीजों के परखचे उडते हैं और घुआ साफ होते होते तो आदमी मलबे का ढूँह रह जाता है। इस तरह मरने से पहले अपने शरीर को ऐंठत और मरोड खाते खुद कितनी स्पष्टता से जी चुका है। वह दौड रहा है जान कितने घटो और युगा से दौडता रहा है और अभी भी उसे सामने की झाड़ी दीख रही है, निरंतर कम होती दूरी दीख रही है, इसीसे क्या यह साबित नहीं होता कि वह मरा नहीं है, शायद मरेगा भी नहीं।

पर सुनते हैं, लडने और भागने के दौरान जो चीटें महसूस नहीं होती, वे बाद में जिन्दगी भर टीसती रहती हैं। ऐसे समय तो एक ही उम्मत भावण एक ही उम्माद हाता है, इस स्थिति से जैसे भी हो बच निकलो सकिन इसके बाद गुजरी हुई स्थिति का बार बार सौटता घातक शरीर और चेतना पर लगे घावों का नस-तोड दद, खुली आँखों में मडराता सत्राम—आदमी सिर्फे खारपाई पर पडा पागलों की तरह चीखता और कराहता है क्या वह भी इसी तरह असहाय और अपग नहीं ऐसा नो नहा होगा कि वह झाड़ी के नीचे बैठे और उठ ही न पा ? या बैठत

आख ठीक हो गई। अच्छी हो जान के बाद भी आगे खोलन से पीडा के अनुभव का डर फिर भी कई दिनों तक बना रहा जिसमे मैं हरदम अतन्त्र रहता था। अत मे एव दिन में लौट आया—ट्रेन चलती रही, दोना ओर अनगिनत ताड के पेड, पूव दिशा मे समुद्र की सतह पर उडत पसी, घरती के गौरव को वहन करती पुष्ट सुतर तैलय युवतियो को दलता हुआ फटक लौट आया। काल ममर परथर के रग से डाक्टर गन्तयत मेरे लिए देव बंध बना गए थे। विशाखापट्टनम मेरे लिए अमरावती बन गया था। कुछ नही समझ पाने के बावजूद तनुगु भापा मुझे मधु की तरह लग रही थी, मेरे लिए वह भापा मनोहर बन गई थी।

1950 रेवेंशा कालेज के प्रथम वष (कला) म मैं फिर से दाखिल हुआ। तब मैं अपने आप अपने सहपाठियो के साथ एक साल पीछे आ गया। पर उनका मुझसे एक साल आगे बढ जाना मेरे लिए कोई दुख की बात न थी। उनसे से कई मुझसे अधिक सुंदर, स्वाम्प्यवान और ऐश्वर्यवान भी तो थे। मैं अतीन के द्वारा नही भविष्य की कसौटी पर अपने अस्तित्व की यथायता को परखूंगा एमी मेरी प्रतीना थी। ममार म मरी आवश्यकता को लेकर ईश्वर से कुछ प्रमाण भी मुझे मिल गए थे क्योंकि अघा या काना हीकर उडीसा नहीं लौटा था मैं।

अनुवाद श्रीनिवास उद्गाता

राजेन्द्र यादव

वस, उस सामने वाली भाड़ी तक ही तो पहुंचना है

उस लगता है, इस बार वह काफी सुरक्षित जगह आ गया है। इस खेन को पार करते ही पगडंडी और फिर भाड़ियों का झुरमुट वही बैठकर वह कुछ देर सुस्ताएगा, तभी देखेगा कि गोलियां कि खरोचें, स्पिलटस या टूटते मकानों के ईंट-पत्थर शरीर में कहां-कहां लगे हैं? अभी तक अपने वच्चे रहने पर आश्चर्य होता है। शायद कोई भी चीज किसी खतरनाक जगह नहीं लगी है, वरना वह तो वही ढेर हो जाता। उसने फिल्मों, टेलीविजन में देखा है, उपयास कहानियों में पढा है और सुन-समझकर ऐसा लगता है, जैसे उस सबको आखा और चेतना से भोग भी चुका है। गोली या फटते गोलों के टुकड़े उछलते हैं घूल मिटटी या दूसरी चीजों के परखचे उड़ते हैं और धुआं साफ होते होते तो आदमी मलबे का दूह रह जाता है। इस तरह मरने से पहले अपने शरीर को ऐंठत घोर मरोड़ खाने खुद कितनी स्पष्टता से जी चुका है। वह दौड़ रहा है, जाने कितने घंटों और युग से दौड़ता रहा है और अभी भी उसे सामने की भाड़ी दीख रही है, निरंतर कम होती दूरी दीख रही है, इसीसे क्या यह साबित नहीं होता कि वह मरा नहीं है, शायद मरेगा भी नहीं।

पर सुनते हैं, लड़ने और भागने के दौरान जो चोटें महसूस नहीं होती वे बाद में जिन्दगी भर टीसती रहती हैं। ऐसे समय तो एक ही उम्मत घावा, एक ही उम्माद होता है, इस स्थिति से जैसे भी हो, बच निकलो लेकिन इसके बाद गुजरी हुई स्थिति का बार बार लोटता आतक शरीर और चेतना पर लगे घावा का नस-तोड़ दद, खुली आंखों में मडराता सत्रास—आदमी सिर्फ चारपाई पर पड़ा पागलों की तरह चीखता और कराहता है। क्या वह भी इसी तरह असहाय और अपग वहाँ ऐसा तो नहीं होगा कि वह भाड़ी के नीचे बैठे और उठ ही न पा ? या बैठत

ही भेजे कि चारों तरफ से हमलाबरो ने उसे घेर लिया है और वह सिर्फ निरुपाय होकर मौत के नगे पजो का अपनी तरफ बढना देख रहा है ? तब उस गुडडी का क्या होगा ? कहीं वह भाड़ी भी तो दुश्मन को छिगाए उमकी घात में नहीं बठी ? फिर किधर जाएगा ? कोई न कोई रास्ता वहा भी निकलेगा—उसने अपने-आपको समझाया, हर जगह एक रास्ता होता है ।

पहले किसी तरह वहा तक पहुचो तो सही । वह अपने आपसे बोला, और कदल में लिपटे वडल को उसने और भी जोर से छाती पर चिपका लिया—इस तरह कि उसपर दबाव न पड़े । और तब धिक्कार म उसन अपने आपको गाली दी—देखो वह सिर्फ अपने बारे में सोच रहा है अपन शरीर और जीवन की चिंता कर रहा है और गुडडी की बात एकदम भून ही गया है । लेकिन इम क्षण रहे और गुडडी अलग कहा है ? वन्कि इस समय जिस स्थिति में गुजर रहा है वह तो सिर्फ गुडडी के ही लिए है । उसे अपने आपको नहीं सिर्फ इम गुडडी को सुरक्षित जगह पहुचा देना है किसी तरह इमे बचा ले फिर भले ही भाडियों के नीचे डेर हो जाए मुनी मैं अपन लिए नहीं मिफ तरे लिए भाग रहा हूँ यह बात वह गुडडी का नाम लेकर कहना चाहता था । लेकिन अचानक लगा जैसे उसका ताम ही भूल गया अरे यह क्या हुआ ? वह चौंक कर सहसा ठिठक गया इसका नाम मुझे नहीं याद आ रहा ? उफ, क्या नाम है तरा ? आयशा मरियम मीना नहीं, नहीं । यह इसका नाम नहीं है । सचमुच ही अपनी बच्ची का नाम मूल गया क्या ? कहीं उमकी याददाशत तो एकदम नहीं खत्म हो गई ? अब ? अन्ठा, भरा अपना खुद का क्या नाम है ? अभी अभी कुछ हुआ डरूर है उसके साथ ? लेकिन फिर उसन जोर से तिर को भटका दिया और दौडने लगा नाम वाम पीछे याद आने रहगे, पहल वहा पहुचो जमे भी हो

बाग वह भाडियों के भीतर जाकर पाए कि वही कोई और भी छिपा बैठा है चौंक और डरकर वह वहा से भी भागने की बात सोचे और तभी लगे कि वह एक औरत है तब तो वह गुडडी को उते सौर

ही सकता है। हर औरत मा होनी है। वह जरूर इसे बचा लेगी, पाल देगी लेकिन लोना को ही भागे या वहा किसीने पकड लिया या मार दिया तो ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा। जो इस मार धाड गोलाबारी और अघाघुघ भागदौड मे नहीं हुआ, वह वहा कसे होगा ? होना होता तो अभी तक हो जाता। अभी भी तो हो सकता है ! और मान लो कि ऐसा चमत्कार हो कि वह औरत इसकी मा ही हो तो ? वह तो शायद खुशी से वही मर जाएगी अपनी गुडडी को पाने की खुशी मे जोर-जोर से रोने लगे तो ? इन औरतों के साथ यही मुभीवत है बहुत खूब होगी तो रोएगी बहुत दुखी होगी तो रोएगी वह हमवरन उस वकन हम तीना को पकडवा देगी। पहचानते ही मैं सजसे पहले उसका मुह दबा दूगा

जरूर वहा भाडी के पीछे कोई चमत्कार उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, हजारों वार की तरह फिर एक दिशवाग उसके भीतर एटम बम क धुए जमा कुकुरमुत्ते की शकल मे आकार ग्रहण करना भटसूम होता है। मान लो ऐसा चमत्कार हो ही जाए और हम तीना फिर से मिल जाए ? फिर तो दोना मा बेटी मिलकर मेरी इन खरोचों, घावा और बाहरी-भीतरी चोटा को अपनी सेवा से सभात लेंगी भले ही वह फिर जि दानी भग चारपाई से न उठ पाए। उमने देखा कि वह एकदम असह्य और असमथ पडा है और मा बेटी चि ता भ उसके आसपास घूम रही हैं। कभी उसकी सेवा सफाई करनी है, कभी करवट बदलवाती हैं कभी दुठ विलाने विलाने के लिए सटारा दकर उठाती हैं गुडडी पास बंठकर उसे अखवार और कितारें सुनाती है, अपने और उसके बचन भागने की पूरी कहानी विस्तार से सुनती है, और भय, घातक, घाश्चय से भावें फनाए उस सबकी कल्पना करती है। सुनाते सुनाते वह फिर इसी क्षण में लौट आता है गुडडी मुझे तो आज भी विश्वास नहीं होना कि मैं तुम्हे लिए हुए इस सब से गुजरा हू

गुजरा कहा हू, सूझर, गुजर रहा हू। उतने अपने को भवभीरकर

फिर वापस हाका। उल्लू के पटठे, यह समय भविष्य में जीने का नहीं, इस क्षण को मार कर लेने का है, दहकते अगारी की इस पट्टी को फलाग कर दूसरी तरफ चले जाने का है। मान लो, आज या कल इस स्थिति से बचकर निकल भी गया तो क्या इसी बीच गुडडी इतनी बड़ी हो जाएगी कि सेवा करते हुए तुम्हारी चारपाई के आसपास घूमे? या बठकर कहानिया सुने-सुनाए? डेढ़ साल की बच्ची अभी पूरे वाक्य तो बोल नहीं पाती कभी कभी यह साली कल्पना भी बँसी प्रखर हो जाती है। कल्पना नहीं, सिर्फ इस क्षण से छूट भागने का बहाना गुडडी तो वह है जो इस फटकर चिथड़ा हो गए कबल में लिपटी तुम्हारे हाथ में है पता नहीं, इसमें लिपटी सास भी ले पा रही है, या नहीं, बेहोश तो जरूर हो गई है कहीं एकदम ही और वह याद करने की कोशिश करने लगा कि घर से भागते हुए जब चौखट गिरी थी तो उसे मैंने अपनी बांहों और कंधों पर ही तो भेला था, गुडडी को चोट कहा लगने दी थी? व घे से लेकर कुहनी तक बाया हाथ दब कर रहा है। कपड़े और खाल पटने की तो कोई चिन्ता नहीं कहीं हडडी न टूट गट गई हो अभी नहीं, अभी नहीं—उसी झाड़ी के नीचे बैठकर देखूंगा कि क्या टूटा है क्या बचा है बटा बैठकर वह जरूर सुरक्षित सास ले सकेगा इस अ बी और दिशाहीन दौड़ को समाप्त करके सोचेगा कि आगे क्या करना है काश, उसे जरा दम लेने का मौका मिल जाए वस, फिर तो पचास मील आगे और दौड़ लेगा ।

लेकिन वहाँ से भी अगर पिछली दजनो बार की तरह भागना पडा तो? पता नहीं कितनी बार उसे लगा है कि उस दीवार की आठ में सुरक्षा है उन मोड़ को पार कर ले तो खतरे से बाहर हो जाएगा। इस गली के पास ही तो पुरानी इमारत का खडहर है, उससे लगा कब्रिस्तान है, वहाँ जरूर सास ले सकन की गुजाइश मिलेगी, लेकिन हर जगह ही तो खतरा उसे और बडा होकर मिला है—खूखार, पागल भेडिये की तरह उसपर भपटटा मारने को तैयार कहीं उसे बहुत पास ही बूटा और लोगो के भागने की भारी धमकती हुई आवाजें मिली हैं कहीं पहल से ही कराहकर दम ताडते बटे फटे, सुरक्षा की खोज में भागे हुए उठी

जैसे लाग मिले हैं, और वही उसके पहुंचने से पहले ही आकाश पाताल फोड़न वाले धमाके हुए हैं और सब कुछ खूनी कंधे के साथ आस फोड़ विस्फोट के टुकड़े टुकड़ा में बिखर गया है, तब हर बार उसने गनीमत की मान छाड़कर सोचा है अच्छा हुआ वहां नहीं था वरना बचपन में उठने बनेने मूर्ख को मार जात देवा था चारा और ये लोग भाले, गडगन गुल्हाटिया और डठे लिए दौड़ते थे, ढोल बजाते, चीखते पुकारते, हाकें लगाते कभी कभी तो फेंके हुए भाल की पूरी फाल पेट में लिए-लिए ही मूर्ख दौड़ता था—मान के पीछे पिसदंत डंडे के साथ खून की धार छोड़ता हुआ, चिचियाता और चीखता हुआ

नमक में नहीं आता, कौन है जो या एक एक घर को फूट रहे हैं, सभी कुछ तो नाड़े फोड़े और तहम-नहस किए जा रहे हैं ? कभी कभी उस गंगा है जैसे माझील में हर हर महादेव और 'अल्लाही अकबर' का गोर हो रहा है तो कभी लगता है जैसे हमलाबरा में जनऊ और भागी मूछावाले लोग हैं जो दहाड़ रहे हैं नीच, कमीना, ठाकुरो और ब्राह्मणों की बराबरी बराग हम एक एक घर फूट दगे बच्चे-बच्चे का चीर दगे कभी कहीं से सुनाई देता है, साला जनरा, बगाली—हम पजाबिया और पठाना के मुंह लगता है, तेरे काजी नजरुस्तलाम और मुजीब की मा नहीं, नहीं, ये सब तो बहुत पुरानी पढी सुनी अलशारी बातें उस याद आ रही हैं यह तो कोई और ही आफन है। शायद कुछ लोग कह रहे थे गहर को दुश्मन ने चारों तरफ से घेर लिया है यह उहीवा हमला है एक एक घर की इट बग दगे या शायद कोई यह भी कह रहा था कि अपनी ही हारी हुई फीजें पीछे भाग रही हैं। सब जानत हैं हारी हुई फीजें, हमलावर फीजों से ज्यादा खूबार होती हैं वे अपने ही गुर, फंक्टरिया और पुल उड़ाती हैं, अपने ही रमद और हथियारों के गोशना को आग लगाती हैं फमलें, गैत, दुकानें जलधिर फूट दनी हैं और अगर बची रही तो अगले दिन सुनादी करा देती है यह मय दुश्मन ने किया है दुश्मन की फीजें अपने जैसे कपडो और निगाना में आई थी हा, हा, हमारे लिए तो 'दुश्मन' ही हैं, 'चीत की योजनाओं में मार जाते हो या 'हार के बचाव में' मरना तो हमे ही है।

हमार तो दानो ही दुश्मन हैं । सरहदो पर बँठे हुए, या सरहद बनाने वाले । शहरो, खेतो, या पुलो की भी कँसी बदकिस्मती है हर हालत मे गँदा उह ही जाना है लेकिन आज स्थायी सरहद रह कहा गई है ? हारे हुआ की सरहद क्या होती है ? चाहे कितने पीछे सरकत जाओ, फुफकारत अजगर भी सरहद उतनी ही पीछे लौडती आती है

मगर कही कोई दीखे, या पहचान मे आए ता कम से कम यह तो समझ मे आए कि दुश्मन है कौन । अपन 'दुश्मन' हैं बाहरी । यह भी तो याद नही आ पा रहा कि यह लडाई कब शुरू हुई थी । किन किनक चीज शुरू हुई थी । अब तो चीजें कुछ कुछ दीखती हैं, वरना जब 'हमला' हुआ था, तब तो बहुत ही अजीब हालत थी । आसमान म छाया हुआ गाढा गाढा घुआ बीच बीच मे इधर से उधर उछाली जाती या फेंकी हुई टूनी फूटी चीजा बिबाड कुसिया शहतीरों या शरीर के हिस्स लेकिन सबसे ऊपर एक दूसरे के पीछे लौडते काले धब्बो और चक्त्तो की गजल म निरन्तर और लगातार गूजता एकरस शार पता नही चलता था कि यह शोर टका, मोटर गाडिया, हवाई जहाजा का था या माहील म पूनी चीज पुकार, नारो और दहाना का मिना जुवा गडमड शार था कभी बहुत ही पास, कभी कही बहुत दूर गूजते घमाने और घडघट, नट भड की बराहा के साथ गिरत मकान, फाटक, मीनारो या परनाट की दीवारें

ऐसे म कोई किस पहचाने ? शोर से किसी भी चीज को देखन की फुरमत किसे है ? सिफ ऐसा लगता था जैम दिमाग मे किसी भारी चक्त्तो का इजन चल रहा है और उसे बन्द करने का म्बिच टूट गया है देखत रहो देखते रहो, कुछ पता ही नही चलता कि आनिर देख क्या रह हो, मानो दूसरी और चीजो की तरह दखत और समझने का जोडे रखन बाल सार तारो को किमीने डायनामाइट से उडा दिया है, और वहा सिफ लगातार गूजती ग्शोनी थर्रहट और साय साय गालिया मा गुजरता कुछ है जो मौत को देखकर डर हुए कुत्त मा रिरियाता भौकता है भागो नागा, यह जगह टोर नही है, इस जगह खतरा है, यहा से भागो, दखो उधर म काई आ रहा है उम दीवार के पीछे बडूव की नली मा कुछ दीग्या है घाम की आवाज के साथ ही चीक्कर काइ लुत्त जाता है कभी भी

जाओ, किसीकी भी आड लो, लेकिन यहा से भागो

हर क्षण लगता है, यहा नही, वहा वहा नही उधर बिना चेहरे के कुछ लोग हैं, लेकिन दहकत शोला-भी आखें हैं, हाथो मे सून-सनी सगीनें लिए दल के दल पीछा कर रहे हैं, इधर से उधर दौड रहे हैं—लोग नही, सिफ सगीनें, आखें और भारी भारी बूट हैं जो धमाधम हर गली, हर मोड, हर दरवाजे और हर चौराहे पर बडे हैं कुछ नाइन लगाकर सीढियो पर चढ उतर रहे हैं, कुछ निशानो की ताक मे लिडकिया से भाक रहे हैं। घिर गया हू घिर गया हू—प्रब कोई बचाव नही है

अपने आपसे वह पहना चाहता है। लेकिन सिफ एक रिरियाहट भीतर स उभरती लगती है क्या कोई उमे अपने लिए नही अपन लिए बनई नही, बस सिफ इसलिये माफ नही करेगा कि वह निरीह, निरपराध बच्ची को बचाने के लिए भाग रहा है ? वह न कुछ चुराकर भाग रहा है, न उसका इरादा किसीको नुकसान पहुचाने का है। चेहरा पर इन लोगो ने चढा क्या रखा है ? किसीका अलग मे कोई नाक नकश पहचान म ही नही आता सब एक जैसा तोमडा चढाए हैं, अगर इम तरह के डाट न बाधे होते तो हो सकता है किसीको पहचान ही लता ही सकता है उनम बाई उसका परिवित होता सभी तो बाहर मे आए हुए नही हागे

कुछ तो यही के, हो सकता है—उसके पास पडोसी ही हो और उस जानते हा। मगर यह पता कैसे लगे ? मान लो, इधर-उधर से, सामने पीछे से, आखो सगीनो, भालो गडासो और बूटा का एक भुड अचानक घेर लेता है तो वह क्या करेगा ? कबल लिपटे बडल को आगे बढाकर धिधियाते हुए भीख मागेगा भाइयो भुके मत मारो, मैं अपन लिए नही, इस बच्ची के लिए इधर स उधर जान बचाता भाग रहा हू, इसपर रहम करो इसन किसीका कुछ नही बिगाडा बिगाडा भैन भी नही है, लेकिन इसे तो अभी कुछ भी करने न प्रग्न का मौका ही नही मिला लेकिन वे लोग उसकी गिडगिडाहट सुनेंगे? उसकी बात का विश्वास करेग?

नही, उनम से एक सगीन या बछीं भपटकर उसस बडल छीन लगी और फिर वे उसके सामन ही उसे गेंद की तरह इधर स उधर उछावेंगे

मशीनो और भालो पर रोकेंगे कुछ देर वे मनोरजन करेंगे और फिर धाय की एक आवाज के साथ सभी कुछ समाप्त हो जाएगा

और इस भयानक कल्पना के बाद वह और भी बेतहाशा भागा है। वही यह कल्पना एक चालाकी ही तो नहीं है? एक हल्का सा सवाल उसके भीतर उठा है क्या ऐसा तो नहीं है कि वह भीतर से जानता है कि गुट्टी मर चुकी है अब उसकी दिताकर, हमलावरो की दया उभारकर वह अपने आपको बचा लेना चाहता है? अपनी जान बचाने के लिए गुट्टी की लाश का इस्तेमाल कर रहा है? इस प्रश्न त उसे भीतर से तिलमिला जरूर दिया था लेकिन भागन में कहीं कोई ढील नहीं आई थी। उनकी दौड़ और जोर से जारी रही कभी नेटकर जमीन पर घिसटन हुए, कभी घुटनों के बल, और कभी तीर की तरह सिर्फ एक जगह, अंधेरी-सी गली में, मलबे और कूड़े के ढेर के पीछे उसे पल भर का अवसर मिला था। उसने बडल जमीन पर रखकर थरथरात हाथा स कमीज उतार डाली थी, उसका बाहे फाड़ डाली थी, कमीज फिर स पहनकर बडल छाती से चिपकाया था और ऊपर-नीचे बाहो को रस्सिया की तरह बांध लिया था ताकि बडल कमीज के अंदर और ऊपर नीचे स सुरक्षित रहे। बड़ी अजीब सुगंध, सातपना देती-सी गर्मी उसे छाती पर महसूस होती रही थी, और इस तरह उसके दोनो हाथ खाती हो गए थे। लेकिन भागते हुए वह दोना हाथ बहा रखकर बडल को साध लेता था, जमीन पर रेंगते हुए, उस बचाकर कुहनिया और घुटनों के बल सरकाता था और उसे हर समय लगता रहता था जैसे ऊपर और नीचे पटिया की तरह कसी कमीज की बाह ढीली हो गई है और बडल अब सरबकर गिरन ही वाला है नहीं वह उस गिरन नहीं देगा। जैसे भी हो, उसे तो कहीं बचाव की जगह पहुंचा ही देना है। (बाग, आदमी के पास भी कगाट की तरह की एस अवमग के लिए एक थैली होती) शायद इस तरह अवमग गलन में वह सोचना भी नहीं था, उसकी संपूर्ण चेतना स समाई हुई निरगाद और अनकही स्थिति ही यही थी लेकिन इसके साथ ही दो बातें और दिमाग में आई थी हाथ में, सामने, बच्चो रहती है तो हमना करने वाला एक बार सोचता है। हो सकता है वह खुद भी बाल-

बच्चा वाला हूँ और अपने भीतर दया महसूस करे अब तो किसीने कुछ पता ही नहीं चला कि उसने पास कोई बंदूक नाजूक, नहीं-भी धक्कती जान है। फूनी हुई यमीज के भीतर तो कुछ भी हो सकता है, चुराकर उठाई हुई चीज, चाई कीमती सामान, या दूसरो की मारने के लिए चाई गाला-बारूद, या दुश्मन की खबर कहीं अपना तक पहचान के लिए वायरलेस सेट यानी इससे खतरा और बढ गया है। दूसरी बात पर उनके अपने आपको धिक्कारा बच्ची मर तो गई ही है बेजान शरीर और मिट्टी के ढल में फर क्या है ? अगर किसीन सामने से समीन, गाला या एसी ही चाई चीज मारी तो हो सकता है उसके अपने शरीर तक पहुंच ही न पाए लेकिन इस विचार के साथ ही ग्लानि का एक ऐसा ज्वार उस अपने भीतर उमड़ता लगा कि मन हुआ, कि वहीं टह कर बैठ जाए और चाख चीमकर पुकार आया, आया मुझ मारो, मुझे गोद दो, ममीना और गडामा स मेरी बोटी बोटी काट डाला। मर पास बचाने के लिए कुछ है उस बात पर बिल्कुल रहम मत करा तुम्ह वसम है जा मेग रशा-रेशा न बिछेर दो मैं नीच, कायर, इसे भी दस्तेमाल करना चाहता था इस मेर ऊपर धूबो रहमदिलो !

पता नहीं, कितनी बार यह बात उसके मन में आई कि इस आतंक और तनाव के नस नस तोड़ देने वाले दबाव की वह किन्ती देर और दगास्त करेगा ? क्या नहीं बहा गिरकर हम ताड टता ? क्यों नहीं लोग के सामने जाकर भीख मागता मरे ऊपर दया करा, मुझे मार दो हम अपनी दोड़ स मैं तग आ गया हूँ, जहां न चाई बचाव है न रास्ता, न मीन है न भागने की दिशा तुम्हारे हाथ की जरा सी हरकत स मैं मुकन हो जाऊंगा मुझे जिन्दगी नहीं, सिफ इस यातना स मुक्ति चाहिए इस सयान स खींचकर मुझ बाहर निकान दो मैं तुम्हारा बहुत बहुत धुन-धुजार रहूंगा बहुत बार तो सचमुच उसे खुद डर लगा कि वहीं वह ऐसा कर ही न डाल और अपने का । जाकर उनके सामन न फेंक द—या पुकारकर उह ही न बुरा ले नहीं जानता, उम ऐन मौके पर कान रोक नेता था—अपनी कायरता या इस गुड्डी की बचान की इच्छा

उम लगता है जैसे एक अविश्वास उसके भीतर, उसका अस्तित्व

मे समाया हुआ है—वह अब तक बच और भाग इसीलिए पा रहा है कि उसके पास यह 'बडल' है। वरना ऐसे हालात में, उसके यूँ बचे रहने का इधर से उधर भागने की जी तोड़ कोशिश या अपने भीतर उस शक्ति को पाने का कोई कारण है? उसके भीतर मर मरकर जीता हुआ यह बल इस 'बडल' के साथ होने का है, या इस अनकहे निणय या कसम का कि यह है तो इसे बचाना ही है? हर कसम क्या मुक्ता तानकर ही पाई जाती है? कुछ कसमें, आपसे अनचाहे मनजान आपके अस्तित्व में अपनी-आप एक रूप नहीं ले लेती? बल्कि वह कसम और आप अलग नहीं होते ऐसे सक्ती में तो कसम है, इसीलिए आप होते हैं चूँकि यह कसम 'बडा का आकार लेकर आपके होने से अलग नहीं कर दी जाती, इसलिए 'अध विश्वास' जसी लगती है

पता नहीं कितनी बार उसे लगा है कि अब उससे एक इंच भी नहीं सरका जाएगा, अगला पाव उठा सकना असंभव है, लेकिन कोई है जो उस पीछे से धकेल देता है—सामने से खींच लेता है। 'गुड्डी' के नाम पर वह एक ब्रह्मण को व्यथ ही तो नहीं ढोये फिर रहा कई बार उसने अपने से पूछा है इसमें अब कुछ नहीं रखा, इसे एक तरफ फेंको और हलक होकर दखो, इस स्थिति में क्या ही सकता है। मगर फिर फिर ही दूसरी आवाज उभरती है मरी नहीं है मरी नहीं है सिर्फ बेहोश हो गई है। मर गई होती तो उसकी सारी शक्ति उसी क्षण चुक गई होती उसके भीतर की यह शक्ति, उसे बचाने की यह आस्था—गुड्डी ही तो दे रही है, उसकी अपनी तो नहीं है वही और से ही आ रही है। एक बार तो शायद ऐसा हुआ भी था (देखो साथ साथ घटित होती हुई बातों को वह कैसे भूलता चलता है, पता ही नहीं कि हुआ था या सिर्फ सोचा था) कि टूटे हुए किवाड़ के नीचे उसने बहुत आहिस्ता से बडल सरका दिया था, और वह अपने को तोड़कर वहाँ से हट आया था। पर फिर उसे लगा, इतने मलबे, लाशों में आज नहीं तो कल कुत्ते बिल्ली ज़रूर अपना भोजन तलाश करेंगे। कौन छोड़ देगा इस मुलायम और स्वादिष्ट भोजन को? दूर ओट से खड़े होकर गठरी को ताकते हुए उसे लगा था जैसे उसमें हलकी सी जुबान हुई है। और फिर उसका रुका नहीं गया। दुगने वेग और आवेग से उस उठाकर

छाती से बिपका लिया और तब आसपास के प्रत्येक भटके से सयत होकर एक तरफ भागा

अपने आप पर उसे बहद आश्चर्य भी होता है इतना प्यार, इतना लगाव और गुड़ी की बच्चा लेने की ऐसी अमदनीय, उद्दाम भावना उसके भीतर कहां छिपी थी ? यह सही है कि बाप होने के बाद उसने अपने भीतर ऐसे अनक परिवर्तन पाए थे, जिनकी उसने कल्पना भी नहीं की थी । लोगो के प्रति उसका रवया कुछ अजीब ढंग न कोमल हो गया था, पहले वह चीजो और बातो को सिफ अपनी निगाह स ही देखता था, निद्रा द्व और लापरवाह था, लेकिन गुड़ी के बाद ऐसा नहीं कर पाता था, जैसे उसकी कल्पना शक्ति एकदम उबर हो गई थी । पहले वह लोगा और स्थितियो को सिफ एकहरा और इक्लीता देखता था, अब उनके पीछे बहुत कुछ ढीखने लगा था । हर व्यक्ति जसे एक झरोखा था और उसके पार वह एक निहायत परिचित अपने जैसे ससार को देखता था, कही उसमे हिस्सा लेता था । उसके साथ उसका अतीत और भविष्य भी ढीखता था, हर बच्चे के पीछे कही एक छोटा सा घर उसके मा बाप, भाई-बहन ढीखते थे । अपने इस बदलाव से वह भीतर ऐसा भरा भरा महसूस करता था, कि खुद व खुद उसका मन कुछ भला और अच्छा करने को करता, खराब और बुरा करन की बात सोचते ही कोई उसका हाथ पकड लेता । शरीर विज्ञान की यह मशीनी बायलाजिकल प्रक्रिया और उसका परिणाम इस तरह के आध्यात्मिक और भौतिक कायाकल्प करती है जसे इस अनुभूति ने भीतर से उसे बहुत समद्व और उदात्त कर दिया था । बाप होना सिफ एक घटना नहीं, मानसिक जीवन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण मोड है, इसपर उसका मन घटा बोलने को करता, लेकिन जब बोलन लगता तो, खुद बाना को वे बातें बसी ही साधारण और रोजमर्रा की लगती, जैसी सब लोग बोलते हैं । तब वह झेंप जाता । अक्सर झुंझलाता कि ये भिन्नक, झेंप आगा पीछा सोचना हर चीज का दूसरो की निगाह से देखना, जाने कितनी फालतू की बीमारिया उसे लग गई थी, जिह पहले उसने कभी नहीं जाना । घर स बाहर निकलता तो गुड़ी मानो एक तार उसस बाध देती । वह कही भी रहता उस तार का खिचाव लगातार महसूस होता

रहता ।

हालाकि एक अफसोस भी उसे थम नहीं था । सार दिन म उमके साथ विताने के लिए मुश्किल से घटा प्राय घटा निकाल पाता होना । हर क्षण एक चीज को महसूस करते रहना और सबसे बटकर केवल उमीद साथ होना दो अलग बातें हैं । वही अपने काम, इधर-उधर की भाग लीड, दोस्त, राजनीति या अपनी ही योजनाओं में उसके पास घर के लिए समय ही कहा होता था । यह सारे समय तुम्हारे लिए ही टुकुर टुकुर दलती रहती है । जब तब आते हो, थककर सो जाती है । उसकी मा शिवायन करती । और तब अपने सार मानसिक कायाकल्प के बावजूद वह अपने आपमें सीधा सवाल पूछ लता सचमुच, उसके मन में पिता जैसी कोई भावना भी है, या सिर्फ उसने एक भ्रम पाल लिया है ? गुड्डी की मा तो आरोप लगाती ही थी, लेकिन वह सुद शका करता था कि क्या सचमुच 'बाप' जैसी कोई भावना उसमें है भी ? दूसरों को दखकर यह बात और शिहत न उठनी कैसे ये बच्चों को लेकर दुलारते हैं, बातें करते हैं, अकसर उहीके बारे में बोलते रहते हैं घटों का समय निकालकर उनके साथ खेलत धूमत हैं, और तब वह अपने को धिक्कारता कि वह अपनी बच्ची के बारे में इम तरह क्यों नहीं बोल पाता ! वह यही मानकर क्या सतुष्ट और शात रहता है कि 'गुड्डी' है और घर में खेल रही है ? औरों जैसा उसके भीतर वह सब कुछ क्यों नहीं उमडता ? जरूर उसकी बनावट में कुछ कसर है बरना य सारी इच्छाएँ तो बहुत स्वाभाविक हैं ! लेकिन अब अचानक ही यह प्यार, यह अपने आपको भावकर 'गुड्डी' का बचा लेने वाला 'बाप' उसके भीतर कहा से फूटकर बाहर निकल आया है ? और इस समय तो ऐसा लाता है जैसे वह क्षणों और टुकुरों में नहीं, अपने पोर पोर में, अपनी सपूणता में मुनस्सिम बाप है । हो सकता है इस क्षण को पार करके वह बच जाए, किसी तरह इसे बचा ले सब कुछ पहले जैसा शात और व्यवस्थित हो जाए कहीं स पत्नी भी सुरक्षित आ मिले और सारा जीवन पहल की तरह चल निकले । तब क्या वह फिर से अपनी उसी दुनिया में नहीं लौट जाएगा ? वही जीने और जीविका की समस्या वही दोस्तों और दंग की राजनीति, वही सुबह से शाम तक की भागदौड, वही रात देर देर से आना शायद

उन सब में उलझकर दिन के चौबीस घंटों में उसे कभी खयाल भी नहीं आया कि वह 'बाप भी है, उसकी एक बच्ची भी है। है तो है, उसके लिए क्या चौबीस घंटों में तरकीबें लटकाकर घूमना रहे ? यह सही है कि इन भीषण क्षणों में गुजरकर बसी लापरवाही तो वह नहीं दिखा पाएगा, लेकिन इस क्षण, बाधा वह औरत देखती कि कस में अपने रेशे रेशे से 'बाप है ! उसे अपने पर गव हुआ और न जान किन अदृश्य तागा को सम्बोधित करके उसने कहा—गधो ! चौबीस घंटे अपने को बाप बाप कहना, बच्चा से खिलवाड़ करके अपने को ताजा कर लेना—तुम्हारा अपना अहंकार और स्वाध है ! जब तुम बच्चा के प्रथम आने पर इनाम जीतने पर लोगो को चकित कर देने वाली प्रतिभा या कला पर फूटकर उनके साथ तन्वीरों में चिन्ता हो उस समय तुम 'बाप' बिल्कुल नहीं होत । बाप का गौरव लोगो उस समय निहायत स्वार्थी और दभी व्यक्ति होते हो और बच्चे का 'कमाल' तुम्हारे रंग रस को जीवन का बहाना होता है ! वह सिर्फ खाद होता है जिसे त्यागकर तुम पौधे की तरह इठलात हो । उस समय तुम बच्चे पर गव नहीं करत—तुम्हें सामाजिक प्रतिष्ठा देने का एक जीवित माध्यम तुम्हारे अपने पास है इसपर गव करत हो मूर्खों आदमी बाप जिन्दगी के सिर्फ एक ही कुछ क्षणों में होता है—संपूर्ण और अतटित ठीक उही क्षणों में जब गौरा के लिए वह बिल्कुल 'बाप' नहीं होता

लेकिन बिना किसी द्वन्द्व, शका या दुविधा से क्या ठीक ऐसा ही उसके साथ नहीं हुआ है ? क्या उसके मन में इस स्थिति से बचने की बात नहीं आई थी ? जब पागलों की तरह साइरन चीखा था और माहौल में जैसे हजारा घंटे घड़ियाल बजने लग था, विराट चक्की चलने का शोर चारों तरफ गूँजन लगा था—उस समय उसने क्या एकदम वैसा ही व्यवहार किया था जैसा इस क्षण सोच रहा है ? तब क्या वह बोखलाया था, घबराया, छिपने की तलाश करता इस कमरे से उस कमरे में नहीं भागा था ? और जब अचानक गालिया चलाने और गोला के फटने के साथ लोगो की चीख पुकार रोने धोने की आवाजें आने लगी थी, तो क्या वह दौड़कर बड़े से पलंग के नीचे ठीक वैसा ही ग्रीधा नहीं जा रोटा था, जसा कि

बताया गया था—गुहनियो के बल थोड़ा सा उठा हुआ, बाना में उगली
 दिए हुए ? इस बीच एक क्षण भी 'गुड्डी' का खयाल आया ? वह तो बाद
 में, बहुत बाद, जब उसने अपने आपकी सुरक्षित होने का आश्वासन द
 लिया, तो भटके से चौंका और गुड्डी ? तब भी क्या पहली बार यही
 नहीं सोचा था कि आदमी में जीन की, बचाव की आदिम इच्छा बहुत
 प्रबल होती है, वह जरूर कहीं न कहीं आड की जगह चली गई होगी।
 जब यह सब गुजर जाएगा तो उसे कहीं न कहीं से जरूर साज निकालूंगा।
 इस समय अपनी जगह छोड़कर बाहर निकलना खतराक है। मगर फिर
 उससे वहां लेट नहीं रहा गया था और वह पटे भरिय गले से 'गुड्डी'
 पुकारता इस तरह भागा था जैसे जलते घर में भागत हो बक्सों के पीछे
 गुड्डी दबी दुबकी बैठी थी। उसने सहमे, भयभीत दरगोण जसी उस चीज
 को उठा लिया था और फिर वापस अपनी जगह आ लेटा था, अपने को
 उमपर बिछाए हुए—लेकिन बोझ सभाले, तब उसे उसकी मा का खयाल
 आया था, पता नहीं कम्बलन वहां चली गई है। अब याद ही नहीं आ
 रहा, क्या कहकर गई थी, उस उल्लू की पट्टी को नहीं पता था क्या, कि
 बाहर की हालात क्या है ? वाश, इस समय वह भागती हाफनी कहीं से
 प्रकट हो जाए तो उसे उसकी अमानत सौंपकर जान छोड़ाए इस वक्त
 बाप' वह जरूर है, लेकिन गुड्डी को सौंपना तो उस ही है यह अमानत
 उसकी है—सारे लगाव भय, परेशानी और चिंता के बावजूद वह इस
 बात को एक क्षण नहीं भूल पाया था। हर क्षण लगता था कि किसी भी
 पल वह आ सकती है भुभनाहट भी होती थी कि क्या झंभट छोड़ गई
 है मेरे लिए !

फिर तभी रोशनदान, काच की खिड़किया, त्रिबाड जोर से घमाकी
 से हिलने और भडभडाने लगे थे, चारों तरफ काच के टुकड़े उछलने लग
 थे। छत और दीवारों के टुकड़े, धूल और धुआ, सीमेंट के टुकड़े घड घड
 बरसने लगे थे। और अचानक चारों तरफ अघेरा सा छा गया था। अभी
 तक उसके भीतर एक विश्वास पल रहा था आसपाम की बिल्डिंगों और
 मकानों पर हमले हो सकते हैं, बम और गोलियों की जद में सब कुछ आ
 सकता है लेकिन उसका अपना घर अछूता रहेगा लेकिन अब कहीं

उसके भीतर के चौकने पशु ने सघ लिया था यहा से जितनी जल्दी हो सके भाग निकलो फिर जाओगे, निकलने का कोई रास्ता नहीं रहेगा, यही क्षण है, सब कुछ तोड़ो और भागो ! बाहर सिर्फ एक हमला होता है, अगर वह आपकी अपनी किलेबंदी को तोड़ देता है तो आपके बचाव की अपनी सारी चीजें एक एक करके आपके ऊपर हमला करना शुरू कर देती हैं, दुश्मन को दूर रखने वाले सारे तरीके आपको खुद घोटकर मार डालने को आपके सामने आ खड़े होते हैं । अपनी से आप बचकर कहा जाएगे ? वह फुर्ती से, आहिस्ता सरककर बाहर आया, धुपके से खींचकर पलंग पर पड़ा कबल उठाया, जल्दी जल्दी उसम बडल की तरह 'गुडी' को लपेटा और फिर बगट्ट भागा—बाहर और बाहर निकलन से पहले ही वह चौखट गिरी थी, जिसे उसने दोनो बाह उठाकर कधो पर भलने को कोशिश की थी तब जैसे बेबस भाव से, बडल उसके हाथा से सरककर नीचे जा गिरा था उसके दोनो हाथ लुज की तरह भूल आए थे । लगा कि अब जिन्दगी भर कभी कोई चीज नहीं उठा पाएगा । पहली बार तो कई क्षण अधेरी आखो के आग तारे नाचने लगे थे और सडे रहना मुश्किल हो गया था फिर पता नहीं कैसे उसने भूलत हाथा को साधकर बडल सभाला था । अचानक तब उसके भीतर एक नया आदमी उठ खडा हुआ था जो 'गुडी' का बाप' था !

अब तो लगता है वह काफी सुरक्षित जगह आ गया है । अगरो भ ठहकता, भट्टी सा नरक कही पीछे छोड गया है वह खेत, वह पगडडी और फिर वह भाडियो का भुरमुट्ट फिन् शायद कोई खतरा नहीं रहेगा । वही बैठकर वह सुस्ताएगा तब फिर इस सारे भयानक दृश्य को दुबारा जिएगा—अभी तो सिर्फ कहा तक भागना है जैसे भी हो

लेकिन इमका क्या यकीन कि वहा पहले से कोई खतरा उसकी तक म नहीं बैठा ? सकडा बार टूटकर, धोखा खाकर भी क्या ऐसे विश्वास फिर फिर मन मसिर उठाते हैं ? क्या इसी भ्रम मे वह अब तक मौन के जाल म फस एक चूहे की तरह इधर स उधर नहीं भागता फिरा है ? क्या

अभी भी ऐसा नहीं महसूस होता जैसे सुरगो की एक भूल मुर्तिया के बीचों-बीच वह दिग्भ्रात सा लड़ा है, बाहर निकलने की पागल उत्तजना में कभी वह एक सुरग में भागता है और आगे जाकर पाता है कि वहां रास्ता बंद है फिर वापस लौटता है, और दूसरी में दौड़ लगाता है जहां सुरग बंद हाती है, वहां उस भयानक बदबू आती है, जस कुछ लोग वहां पहुंच भी पहुंच हाग और हागा हाकर वहीं दम तोड़ बैठे हाग सड़ी हुई लागा की बदबू दर तक उसका पीछा करती है मैं भी गायद वहीं पस्त होकर लाशा के ढेर में एक हो जाता मरी बदबू भी सायद इसी तरह निवास के रास्त की खोज में भटकन वालों के पीछे फेंक हुए गगणपाश-सी लपकती अगर मेरे पाम मरे पाम यह 'गुड़ी' न होनी

उत्तर इन लोगों के पास बचान के लिए कुछ रहना होगा हा सकता है मैं भी गुड़ी जैसा कुछ न कुछ लेकर घरा में भाग हो, और रास्त में हारपर इधर उधर उसे फेंक दिया हो—नतीजे में उनकी सारी जीवनी शक्ति इन्ठरी रह गई हो तभी तो चुक गई। लेकिन आखिर, मैं भी क्या या अपने को बचाकर क्या कर लूंगा? जिंदा रहकर ही क्या जाना है? नाचा करोडा लोगा में एक 'गुड़ी', या एक मैं—रहै, रहै एक बहा है। अपने आपको या 'गुड़ी' को मसार की मर्तों कीमती चीज मानकर बचाए रखने के माह में छुटकारा पाना ही, इस मातना में बच निकलना है। इस बडल में उस शक्ति दी हो या न दी हो लेकिन भीतर से कमजोर जरूर बना दिया है। जैसे अभी ही उसके भीतर प्रायना जसी कुछ गूजने लगी थीं ह भगवान तुम्हें मैं कभी नहीं माना, आज सच्च मन में प्रायना करता हूँ, इसे बचा लो। इस सुरक्षित वही पहुंचा दो अगर इस बार यह चमत्कार हो गया तो सारी जिंदगी भगवान का विश्वास फलान में लगा दूंगा वह है जरूर है, उमन मेरी 'गुड़ी' को बचाया है या अगर मैंने इस खेत को किसी तरह पार कर लिया तो मान लूंगा कि मेरा कोई कुछ नहीं जिगाड सकता उम आडी का आकार दूर से त्रिभुज मंदिर के बलक जैसा दिखता है

उन सचमुच लाता रहा है जैसे वह हर सडक पर दींकर उसी एक चौराहे पर निबना आता है। क्या सारे समय वह इसी चौराहे के आस-

पास घूमता रहा हूँ घूमता रहेगा ? क्या उसकी यह सारी दौड़ सिर्फ एक क्षण के घूमाव की दौड़ है ? कभी खतरों के बिंदु से बहुत दूर और बाहर निकल जाना का भ्रम, और फिर अचानक अपने को उसके बीच-बीच पाना वही एना तो नहीं है कि वह इससे बाहर निकलना ही नहीं चाहता ? किसी खतरा और हमले के भय से भागता रहा, वही उसकी प्रवृत्ति ही तो नहीं बन गई है ? बाहर निकल आएगा तो चूर चूर होकर गिर पड़ने के सिवा रास्ता ही क्या बचेगा ? और गिरना वह नहीं चाहता, इसलिए जान-बूझकर खतरों के आसपास बन रहकर अपने को चापुक नार मारकर भगा रहा है—कैबिन कब तक ? टूटकर ढह जाना का बिंदु जब तक स्थगित हो सके फिर गिरा तो है ही—मास कब तक माय दगी ? क्या जी, ठीक इसी क्षण और भी ताबूत लोग ठीक इसी तरह अपना कुछ 'कीमती' बचाने के लिए भाग रहे होंगे इसी तरह खतरे और मौत के साथ चूह बिल्ली की मजदूरी का खेल खेला रहे होंगे ? काग, उनमें से कुछ गिर जाते तो अदले पड़ जाना की यह घुटन तो नहीं होती। जहर ऐसे लोग उभरे मिले होंगे, लेकिन निगाह टिकाकर उन्हें पहचानने की फुरसत उसके पास कब थी ? उस तो हर भागता हुआ आदमी 'दुश्मन' लगना था, ही नकता है औरों का खुद वह 'दुश्मन' लगा हो। जरा किमीकी रोककर पूछ ही लेना किन्तु अनजान आदमी को एक दूसरे पर विश्वास कैसे होता ? फिर अपनी कीमती चीज, उसे बचाने की कमजोरी किमीकी बताई भी तो नहीं जाती—भ्रष्टकर छीन ही ले तो ? मगर क्या उनके दिमाग में भी यह बात नहीं आती कि हम नारे भाग और खड़े हुए लोग मिलकर एक दूसरे की हिम्मत ही नहीं बचाते, शायद अपनी अपनी कीमती चीजों को बचाने के लिए एक मोचा भी बना सकते हैं। सवाल यही है कि पहल कौन करे ? अकेला आदमी कब तक अपनी भीतरी शक्ति को निचोड़ निचोड़कर अपने को घसीटना रहेगा ?

उमन कभी एक पोलिश फिल्म देखी थी। उसका एक दृश्य दिमाग पर रन नरह खद गया है कि न चाहने पर भी बार बार समय अनमय उभरकर उभरे क्या देता है। कुछ लोगों न सत्ता के खिलाफ विद्रोह किया

था। उन्हें पकड़कर एक झकेले किले में यातनाएँ दी जाती थीं। यातना का यह तरीका कितना भयानक था कदियों को छत पर बैठा दिया गया। खुले मदान में सिपाहिया की दो लाइनें आमने-सामने सही हो गई—बीच में गली भी छोड़कर पच्चीस इंच, पच्चीस उधर। हरेक के हाथ में कोड़े। इस गली के दोनों सिरो पर मुग्ने बन्द करने हुए दो सिपाही, बीच में एक अठारह उन्नीस साल की एक 'विद्रोही' लडकी एकदम नगी छोड़ दी गई। हर सिपाही उसे कोड़ा मारता था, वह बिन विलाकर आगे भागती थी—और फिर कोड़ा पडना था फिर अगला सिपाही फिर उसके बाद बाला मिरे वाला सिपाही उमें घक्का दकर फिर वापस मोड़ देता। दोनों और लगातार कोड़े खाकर, चीखती, हाफती, कराहती वह जिन तरह इस सिर से उम सिरे तक भागती थी वह दृश्य पता नहीं क्यों उमके दिमाग से निकलता ही नहीं है बहुत बार वह लडखडा कर गिरती उस फिर खडा कर दिया जाना। दौडा दौडाकर उम उहान चूर चूर कर दिया था और हर क्षण लगता था कि वह अब गिरी, अग गिरी। इस बार नहीं उठ पाएगी। आखिर वह गिर ही पडी और फिर कोडा या ठोकरा के वाजजूद उठी ही नहीं। ऊपर से देखते कदियों में कुछ उस दृश्य को देखकर पागल हो गए कुछ ने यहाँ से छलाग लगाकर आत्महत्या कर ली खद जब यह दृश्य उसके सामने आता है नाभि से उठकर ब करने जमी अनुमति उसे होने लगती ह। बार बार ममभाता है कि वह मिफ सिनेमा का एक दृश्य था और वे सभा लोग अभिनेता थे। लेकिन इससे उस दृश्य के आतक में कही कोई अंतर नहीं पडता। इस क्षण वह यातना भोगती हुई लडकी कौन है? वह खुद? बडल में लिपटी 'गुड्डी' ? इस समय इन सारी बातों को छोटने का मौका कहा है? सब कुछ तो गडमड हो गया है। इस समय तो सच्चाई सिफ इतनी है कि कही धुधलके में एक लडकी है और उसे कोड़े खाते हुए दौडना है इस सिरे में उस मिर तक। वह जानती है कि यह दौड उसे कही नहीं ले जाएगी, उसे तो जब तक सास लेन की मभावना है या जब तक होश है, तब तक सिफ कोड़े खाना है और दौडना है—जब तक विल्कुल चूर चूर होकर ढेर नहीं हो जानी भाडियो के उस भुरमुट तक तो उसे पहुचना ही है।

क्या जी, आदमी के मन में यह उम्मीद राम की चीज क्या है ?
 क्यों नहीं यह एक दो बार टूटकर ही समाप्त हो जाती ? क्या हमारा
 कहीं कुछ बचा रहता है और जरा-सा बहाना पाकर इस तरह सार सोच
 पर छा जाता है ? यही नहीं, आपके सार त्रिया बलाप, हर हरवन को वही
 तय करने लगता है ? अब वह अच्छी तरह ज नता है कि क्या भाड़ी म
 कुछ नहीं है । हर भाड़ और बचाव न उस द्वाी तरह के भूठे आस्वासन
 दवर दौड़ाया है । अक्सर वहा पहुचकर उमन दला है कि दूर म जो
 जगह बहुत सुरक्षित लगती है पाम पहुचकर त्रिलुल बँसा नहीं होता ।
 पहुचकर पाता है कि यहा तो घिर जान या पवड लिए जान के और
 भी ज्यादा खतरे हैं तब, इन दावर म धूमत रहन का अर्थ क्या है ?
 इन निरर्थक और लक्ष्यहीन दौड को यही खत्म कर दन स उम रोके हुए
 कौन है ? मान लो, यह ठान ले कि कहीं कोई 'गुड्डी' नहीं है कहीं
 यह सुद नहीं है, उक्त कोई भय नहीं है । जब खतरा ही नहीं है, तो
 उस बचान की भावना या कहीं पहुच जान की दौड भी नहीं है । नास
 पास कहीं कुछ नहीं हो रहा । मेर माय कुछ भी नहीं हुआ है मैं विभी
 भी स्थिति स नहीं गुजरा । मेरा कोई कुछ भी घना विगाड नहीं सबता,
 इसलिए मुझे भी कुछ नहीं करना । मान ही लो, वह एसा तय करके
 यहा बैठ भी जाण, सुल में, तो क्या फक पडेगा ? अपन सोचन की ही
 तो बात है बाकी ता सचमुच कहीं क्या फक पडता है ? आदमी गोच
 लेता है इसीलिए समय, स्थान और चीजो स जुड जाता है । यानी समय,
 स्थान चीजें उमन नहीं जुडती—वह अपन आपको उनस जोडे हान का
 भ्रम पालता ह । मान लो, वह इसी क्षण तय कर ले कि न उसका कोई
 अतीत है न भविष्य, न यत्नमान—न वह कहीं से भागकर आया है, न उस
 कहा भागना है—घर 'गुड्डी', यह भाड़ी इस सबसे उसका कोई सम्बन्ध
 नहीं है—तो ? मैं सिफ एक बात कहता हू, अगर सोच ले तो कहा क्या
 बदल जाएगा ? क्या वह उतना ही निश्चित नहीं हो जाएगा जितनी ये
 और चीजें ? मैं इसीलिए तो इन सभस बधा, या जुडा हू कि एसा सोचता
 हू अपने आपको उन सबम जुडा हुआ मानता हू । मेरे भीतर की सारी
 प्रतिक्रियाएँ इस जुडे होन के तनाव स ही पैदा होती हैं । लडकी को इस

तर्ह कोड मार मारत र दौडाना तो वास्तव म एक रूपक है। मोच को खीचकर अपने को आपस लाता वा नियम कर लो, तो कोई भी आपका बना कर सकता है ? एक वार अपने को आपस खीचकर इस स्थिति को देखा तो म हज ही क्या है ? सुनते हैं, योगी तोग इसी तरह अपने आपकी सबय तोडकर अपन आपको खीच लेते हैं और मुक्त हो जाते हैं। न उन्हें धूप लगती है न ठंड, मूल प्यास भी शायद महसूस नहीं हानी। वे काटा की सज पर भी उसी आराम म सोते हैं, जस गद्द पर। सिफ अपन मन को मोड नन मो बात है मगर सिफ इस तरह की कल्पना करना अच्छा लगता है ऐना हा कटा पाता ह ? इसे कही सुरक्षित जगह पहुंचा देने की इच्छा का क्या वह एक पल भी मन से निकाल पाया है। हा, कभी कभी दीच-दीच म 'स एक अजीब मी वान जल्द महसूस होती ह लगता ह जस 'गुड़ी', उमका अपना शरीर, पता नहीं कव के छूट चुके हैं उसके हाड भास इसके माथ नहीं हैं वह सिफ एक हवा है, भागत रहन की एक इच्छा है—अशरीरी और निराकार इसी को शायद तोग 'प्रत कहते हैं—एक अतप्त आकाश

आर इस विचार से घबराकर जस वह खुद ब-खुद ठिठक गया—कही सचमुच ही तो ऐसा नहीं कि किसी बम, किसी सगीन या किसी भारी चीज की मार से उसका शरीर पहले ही छूट चुका हो, और वह सिफ एक अशरीरी आकाश बनकर भागा चला जा रहा हो ? या जिसे वह 'गुड़ी समझकर छाती म समेट है वह केवल गुड़ी' के होने का एहसास ही हो ? इस तरह की आकस्मिक मृत्यु वाले लोग कव शरीर छोडकर इस अशरीरी दुनिया मे पहुंच जाते हैं, शायद खुद भी नहीं जानते। भयकर त्रासका से उमा सामन वधी 'गुड़ी को छूकर-दबाकर देखा, फटकर नार नार हो गए अपन कपडा को टटोला, अभी अभी लगे घुटने के पाव मे निकले खून की चिपचिपाहट महसूस की लेकिन इस सिद्ध कटा होना है कि यह शरीर होने के पुराने अभ्यास की भावना नहीं, साक्षात् शरीर है ? तभी, तभी उसने जैसे हताग होकर अपने आपसे कहा तभी तो वह 'बचता' बना आ रहा है। दरअसल जिसे वह 'बचना समझ रहा ह वह उसका न होता ही है किसीको वह दीखता ही नहीं होगा।

वह अपने आपको जो चाहे समझे, किसी और को क्या पता कि सामने ही एक 'अशरीरी आवाजा' भी भटक रही है ! जरूर यही बात है यह बात न होती तो कैसे वह उस भूकंप और तूफान से गुजर आया होता अब ? अब क्या हो ? अचानक ही उसे बहुत बेचनी होने लगी कि कैसे वह अपने होने को प्रमाणित करे ? कम से कम खुद को तो पता चलना चाहिए कि आप हैं भी या नहीं ? अगर नहीं है, तो इस भागदौड़ से कोई फायदा ? फिर आपका कोई क्या बिगाड़ सकता है ? तब तो किसी हमले, किसी चोट का कोई डर ही नहीं है ! सचमुच यह स्थिति कैसी मजेदार है कि हमला करने वाले सगीनों, बद्रूकों, छुरे, तलवारों लिए आपके सामने खड़े हैं और आप निडर होकर उनके सामन घूम रहे हैं उन्हें मुह चिढ़ा रहे हैं और हस रहे हैं ! क्योंकि उनके लिए आप हैं ही नहीं—सिफ एक पारदर्शी हवा है, जिसके भार-भार सब कुछ देखा जा सकता है ! और क्यों जी, अगर आप हैं और यह समझकर उनके सामने पहुंच जाते हैं कि 'हैं ही नहीं तो ? लेकिन यह तब कैसे हो कि आप हैं या नहीं ? नहीं, यह खुद तब नहीं हो सकता किसीके सामने पहुंचकर, किसीको छूकर, (यानी फिर दूसरो से जुड़कर ?) या किसीसे बात करके ही यह तब होगा लेकिन ऐसा कोई भी तो नहीं दीखता, जिससे 'बात' की जा सके, जिनके सामने जाकर खड़े हुआ जा सके और उसकी प्रतिक्रियाओं से जांचा जा सके कि हा, आप हैं ! और उसने पलटकर हमला कर दिया तो ? या उसके पास घातक हथियार हुआ तो ? अभी तो सिफ शक है, फिर तो सचमुच शरीर छोड़ने की नीवत आ जाएगी बड़ी मुसीबत है, करु क्या ! बीतलाकर उसने लगातार 'गुड्डी को आवाजें दी गुड्डी, गुड्डी जागो बेटा, देखो, अम्मा आ गई और जब अपनी आवाज खुद बाना में पहुंची, तो चौंकर चुप हो गया इस तरह आवाजें देकर खुद खतर को क्यों बुला रहा है ? उसने दात पीसे अम्मा पता नहीं साली कहा जा मरी मेरी जान को यह मुसीबत छोड़कर अब मैं न भाग सकता हूँ, न छोड़ सकता हूँ, न आसानी से मर सकता हूँ, और तो और इसके सिवा और कुछ सोच भी तो नहीं पाता । और वह फिर बिसट-बिसटकर भागन लगा साथ ही उसे यह भी लगता रहा जैसे वह किसी

हैलिकाप्टर में बैठा है नीचे इस मुनगे जैसी चीज को तटस्थ भाव से भागते और घिसटते 'देख' रहा है पूरा न सही, उसका कोई हिस्सा जरूर 'प्रेत' हो गया है, वरना वह इस तरह 'तटस्थ ऊर्चाई' से अपने इस छटपटाते 'व्यक्ति' को ऐसे साफ-साफ देख कैसे लेता ?

उसने दोनों मुट्टियाँ में रेत लेकर अपने मुँह, गरदन और बाहों पर मली—एक तो घावों, सरोंवा और चोटा में इससे आराम मिलता है, पसीना यह बहकर गले या पिंडलियों में चीटी रँगने जैसी अनुभूति नहीं देता—और सबसे बड़ी बात, आपका कोई पहचान नहीं करना अगर अपने आपको शीशे में देखूँ तो आखों के दो मूराखों वाला मिट्टी का डूह लगूँ। यह सोचकर उसे नहीं हल्का-सा आश्चर्य मिला कि अब शायद कोई विशेष रूप से 'उसे' पहचान नहीं पाएगा। हाँ, इतना ही जानेगा कि कोई है—पता नहीं शत्रु या मित्र पूरी रोशनी नहीं तो शायद मिट्टी का ढेर या मेड़ जैसी ही कोई चीज समझे। उसने अपने आपमें कहा, हो सकता है प्रेत की तरह एकदम 'अदृश्य' न हुआ होऊँ, लेकिन 'मेरी अपनी पहचान' तो निश्चय ही अब नहीं रह गई—बीच में लक्ष्य कोई भी एक आदमी। सचमुच, गौर में देखने पर भी कोई आदमी उसे नहीं पहचान पाएगा ? बहुत बहुत मन हुआ कि शीशा होना तो देखता कैसा लगता है या 'गुड्डी' ही होश में हाती तो उसकी प्रतिक्रिया देखकर वह तय कर लेता कि उसकी 'पहचान बाकी है या नहीं ? हाँ, आवाज से शायद पकड़ लेती, उसने गला खटारकर आवाज निकालने की कोशिश की—सपाट और व्यक्तित्वहीन ? अपनी इस कांश पर खुद उमे हमी आई। आदमी का बाहरी रूप रंग, कैसे उसकी चाल, ढाल, व्यवहार और बोली को तय कर देता है। आप एक बार यह मान लीजिए कि भाप, आप नहीं—दुप्यत हैं सिद्धांत हैं—आपका सारा रंग डग, बोली-नहजा यहाँ तक कि सोचना तक बसा ही हो जाएगा। इस क्षण वह एक 'बे पहचान' आदमी का रूप बनाए है, इसलिए उसका सारा व्यवहार वैसा होने लगा है। बल मान लो वह बदर या भालू का बेश बना ले तो क्या ठीक है, वैसा ही व्यवहार नहीं करने लगगा। उसी तरह चलने या गले से आवाजें निकालने लगेगा' लेकिन

उसे सचमुच पहचानता कौन है ? बाप, भाई, पति दोस्त, या एक शहरी आदमी क्या अलग अलग लोगो के सामने उसके अलग अलग रूप नहीं हैं ? अच्छा या बुरा, सब लोग उसे उतना ही तो पहचानते हैं, जितने से उनका सम्बन्ध है। इस क्षण जान बचाकर, सिर छुपाकर भागता हुआ एक आदमी इन सबसे 'बह' खुद कहा है ? इन सबसे हटकर क्या आदमी की अपनी कोई ऐसी 'पहचान' होती है जो कि सिर्फ उसकी 'अपनी' होती है, और किसी दूसरे की नहीं होती ? अगर वह पकडा जाए तो लोग किसीके 'बाप', किसीके पति, किसी दफ्तर के नौकर, किसीके भाई, किसी शहर, मोहल्ले या मकान के 'रहने वाले' को ही मारेंगे—'उसे' कहा पहचान पाएंगे मारने से पहले या बाद ?—इस सारे 'नामा के लबादों' के नीचे वह तो अभी तक एक गुमनाम व्यक्ति ही रहकर मर जाएगा। शायद वही कुछ कीमती बचाने के लिए, यूँ भागते हुए गोली या भाला खाकर मर जाना इतनी बड़ी ट्रेजेडी नहीं है जितनी बड़ी ट्रेजेडी यह है कि आप मर जाए और कोई जान ही न पाए कि जो मारा गया है वह है कौन ? खुद आपको यह बताने का मौका ही न मिले बाद मर रहे जाए सिर्फ एक लावारिस, गुमनाम, बेपहचान लाश

इस क्षण एक भयानक सग्राम के साथ उसे महसूस हुआ कि वह सिर्फ सामने वाली आँधी की ही तरफ नहीं भाग रहा पीछे खून की होली खेलते, लूटते, चीखते, चिल्लाते लोगो की तरफ भी भाग रहा है। उसकी यह सारी दौड़, अपनी पहचान खोकर अदृश्य, अशरीरी और आस-पास की हवा पानी जैसी चीज बनकर अपने को 'खो देने' की ही दौड़ नहीं है, बल्कि अपने को 'पहचाने' जाने की, अपनी इस पहचान को स्थापित करने की—गुदक्षेत्र में जाकर अपने होने की, सूचना देने की भी दौड़ है चाहे इसे पहचाने जाने के एकदम बाद ही उसे क्यों न मर जाना पड़े—इस कीमत पर भी। उस क्षण सचमुच बेहद शिष्ट से उसे महसूस हुआ कि यह दौड़ इकहरी नहीं, हर पल दुहरी रही है—एक साथ दो घरातला पर रही है और तब वह किसी भी तरह तय नहीं कर पाया कि वह मौत से बचकर भागता रहा है या मौत की तरफ भागता रहा है वह 'गुमनामियत' की तरफ भाग रहा है या अपनी 'पहचान'

स्कर्टों और बोटों में घा रही हैं। पता नहीं, जब और कैसे यह, बंगनी कालीन बिछी ऊंची-सी छत के एक्कदम किनारे पर जा बैठा है और नीचे खुले म होते समारोह को देख रहा है। यहां टरेस सिफ इतनी ऊंची है कि नीचे के लोग हाथ बढ़ाए तो वह छू सकता है। वह उनकी सारी बातें, बहसों, गप्पों, और मजाब मुन सकता है। सबके हाथों में कोई प्लेट या गिलास है। शायद उन्हें पता भी नहीं है कि 'ऊपर' से उन्हें कोई देख रहा है। वह इतना किनार बैठा है कि हर क्षण हाथों या सहारा देकर नीचे फिसलन से अपने आपको रोके हुए है। फिसलकर वह उनमें शामिल हो सकता है लेकिन वह वहीं रहना चाहता है, ऊपर उस हर क्षण ग्याल है कि बाहर टैक्सी उसकी राह देख रही है। फिर कुछ बदलता है और गहरे चॉकलेट के रंग वाली साड़ी पहने एक औरत के साथ वहीं खुली छत के किनारे पर वह अपने को समोग करत हुए देखता है। औरत का चेहरा नहीं दीसता, हां, लुगटू की लपट उसके नयुना तक आती महसूस होती है। यह बात उस काफी मजेदार लगती है कि नीचे लोग हस-सा रहे हैं, और उनसे हाथ भर की ऊंचाई पर ही यह ऐसी निश्चितता से औरत को भोग रहा है और इस बात का किसीको आभास भी नहीं है। फिर भी सावधानी के तौर पर दोनों ने अपने दारीर से कोई भी बपटा नहीं उतारा है। छत के किनारे से फिसलकर वह नीचे गिरने-गिरने को होता है कि उसकी आस खुल जाती है। जिस रात उसने यह सपना देखा था, तब भी सोचता रहा था कि इसका क्या अर्थ है, इसमें मन के भीतर की क्या चीज अभिव्यक्त होती है? लेकिन इस समय तो उसे बेहद खीझ और झुझनाहट हो रही थी। कोई मौका है इस सपने के याद आने का? और देखो, न सिर्फ याद आ रहा है बल्कि एक एक रंग कितना साफ और चमकीला होकर दीस रहा है। जैसे रंगीन फिल्म का कोई दृश्य हो। वह औरत कौन हो सकती है? 'गुड्डी' की मा तो नहीं थी, उसके हाथ, कोमल पकड़, चुबन सभी कुछ याद है—सिर्फ चेहरा सामन नहीं आता। अगर बच गया तो जरूर किसी मनोविज्ञान-वेत्ता से इसका अर्थ पूछेगा। ताज्जुब की बात है, इस सारे समारोह या सपने में न कहीं 'गुड्डी' है, न 'गुड्डी' की मा।

गुट्टी की मा होगी क्या इस समय ? सगता है जैसे कहीं बहुत-बहुत दूर चली गई है और शायद कभी वापस लौटकर नहीं आएगी लेकिन इस 'बला' का मैं क्या करूँ ? 'पापा, देखिए, हमने आपके नल पालना लगाई, आप सो रहे थे, आपको तो पता भी नहीं ' यह वाक्य इस समय कहा से उछलकर आ गया ? 'हम पापा को दूध पिलाएंगे ' और फिर पापा की तस्वीर के मुह में दूध की बोतल लगाना—क्यों ये सब उसे इम बेमौखे याद आ रहा है ? अरे कमबख्त, यह समय इम सबम 'डूबने' का नहीं, इस सबको भविष्य के लिए बचा लेना का है अंधेरी सुरंग के दूसरे सिरे पर दीपती रोशनी तक भाग लेने का है भागो-भागो सूखार और लीफनाक, भूखे भेडिया की लपलपाती जीभा और गुर्राती आखों वाले इस चारा तरफ से दबोचते अंधेरे के पार निकल जाओ जैसे भी हों, अपने लिए नहीं, इतके लिए '

मगर जरा सा रूबर बार-बार उभरते मन के इस सदेह को मिटा क्यों नहीं लेता ? क्या पहुँचकर बडल में मरी हुई गुडडी को पाने के घन्के से अभी ही छुटकारा क्या नहीं पा लेता ? इस समय उसम सब कुछ बदाश्त कर लेने की ताकत है अगर मर ही गई है तो एक तरफ फेंक फाककर इस बचाव की लडाई से छुटटी पाओ फिर तुम भी एक ब'दूक, एक भाला एक तलवार या कोई भी चीज उठाकर इन हमलावरों में शामिल नहीं हो सकते ? सचमुच उस लगा कि उस गुट्टी के नाम पर वह अपने भीतर की कायरता को कब तक पालता रहेगा ? य खून के प्यासे, जल्लादा जैसे दीखने वाले हमलावर भी तो भीतर से डरे हुए अपनी ही कायरता के दंग से खाए हुए उस जैसे लोग हैं ! वह भी अघा-घुघ गोलिया चलाए, लूट पाट मचाए और जो सामने आए, उसपर सगीन लेकर झपट पड़े उ हे तो शायद पता भी नहीं चलेगा कि कब उनम एक और आदमी आ शामिल हुआ है । इस डर और खतरे से बचने का सिर्फ एक ही उपाय है । तब वह खुद औरों के लिए एक खतरा ही जाएगा अपने जैसे कमजोर, मुलायम और डरे हुए लोगों को दौड़ा-दौड़ाकर मारने वाला एक आतक सिर्फ बच-बचकर भागत, अपने को इस उस आड में छिपात लोगो को इस माहौल में कोई जगह नहीं है

और अगर उसे यही जीवन जीना है तो किसी गिरती छत, किसी गोली, किसी सगीन या किसी उड़ते पत्थर-भाले का निशाना बनकर मर ही जाना चाहिए मर भी गया तो दुनिया में क्या रुक जाएगा ?

नहीं, नहीं, गुड्डा का बहाण भूठ है। वह अच्छी तरह जानता है कि गुड्डा बेहोश नहीं है मर गई है। वह तभी मर गई थी, जब अपने घर की ही चौखट उसपर गिरी थी—भरपूर और बेरहम

इस भागदौड़ के वावजूद क्या उसे एक क्षण का भी समय मिला कि वह कबल खोलकर देख लेता उसकी सास को गहसूम करके समझ लेता कि उसमें कुछ बचा भी है या नहीं। लेकिन नहीं, उसने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया वरना हो सकता है, इतनी देर से अपने बचाव की इस दौड़ का सारा भ्रम इस कायरता की सारी गरिमा चूर चूर हो जाती। जिन बातों और जिन भावनाओं को भीतर जगा-जगाकर वह अपने आपको दौड़ाए जा रहा है, वे सब कहाँ स आती? फिर तो निश्चय ही हो जाता कि वह लाश को लिए लिए भाग रहा है। और तब इसे फेंकन के सिवा कोई रास्ता नहीं रहता या कहना चाहिए, निणय लेने की अनिवाय मजबूरी से बच निकलना असम्भव हो जाता उसकी यह सारी दौड़ किमी भी निर्णय से बचते जाने की दौड़ के सिवा और क्या है? तब हो सकता है कि उसे हमलावरों में शामिल हो जाने का ही निणय ले लेना पड़ता वह भी उछल उछलकर लोगों को मारता ज़रूरत-बेज़रूरत की चीज़ें छीनता और तो बच्चों के नाज़ुक शरीर में घप सगीन घोपने का मज़ा लेता मुनते है निरकुश क्रूरता, और वे लगाम हिंसा का भी अपना एक नगा और आनन्द है, एक शब्दातीत धिल है—अगर य सय न होता तो आदमी में इतना जोश, यह उरसाह और शक्ति सामध्य कहाँ से आने? कम से कम एक गार हिंसा के इस मुख को जान लेने में बुराई क्या है?

अभी तक इन लोगों में शामिल हो जाने की बात उसके मन में क्या नहीं आई? इतना तो उसे भी पता ही था कि उसके आमपास ही कुछ लोग हैं जो चुपचाप इस तरह की ट्रनिंग ले रहे हैं। कुछ स्थानों की सूचना भी उसके पास थी, जहाँ मारने, लूट लेने, घाग लगाने या पीशा

गुड्डी की मा होगी कहा इस समय ? लगता है जैसे कही बहुत-बहुत दूर चली गई है और शायद कभी वापस लौटकर नहीं आएगी लेकिन इस 'बला' का मैं क्या करूँ ? 'पापा, देखिए, हमने आपके नेल-पालिश लगाई, आप सो रहे थे, आपको तो पता भी नहीं ' यह वाक्य इस समय कहा से उछलकर आ गया ? 'हम पापा को दूध पिलाएंगे ' और फिर पापा की तस्वीर के मुह में दूध की बोतल लगाना—क्यों ये सब उसे इस बेमौके याद आ रहा है ? अरे कमबख्त, यह समय इस सबमें 'डूबने का नहीं इस सबको भविष्य के लिए बचा लेने का है अंधेरी सुरंग के दूसरे सिरे पर दीखती रोशनी तक भाग लेने का है भागो-भागो खूखार और खौफनाक, भूखे भेड़ियों की लपलपाती जीभा और गुर्राती आखों वाले इस चारों तरफ से दबोचते अंधेरे के पार निकल जाओ, जैसे भी हो, अपने लिए नहीं, इसके लिए

मगर ज़रा-सा रककर, बार-बार उभरते मन के इस सदेह को मिटा क्या नहीं लेता ? वहाँ पहुँचकर बडल में मरी हुई गुड्डी को पाने के घबके से अभी ही छुटकारा क्यों नहीं पा लेता ? इस समय उसमें सब कुछ बर्दाश्त कर लेने की ताकत है अगर मर ही गई है तो एक तरफ फेंक फाककर इस बचाव की लड़ाई से छुट्टी पाओ फिर तुम भी एक बटूक, एक भाला एक तलवार या कोई भी चीज उठाकर इन हमलावरों में शामिल नहीं हो सकते ? सचमुच उसे लगा कि उस गुड्डी के नाम पर वह अपने भीतर की कायरता को कब तक पालता रहेगा ? ये खून के प्यासे, जल्लादों जैसे दीखने वाले हमलावर भी तो भीतर से डरे हुए, अपनी ही कायरता के दग से खाए हुए उस जैसे लोग हैं ! वह भी अघा-घुघ गोलिया चलाए, लूट पाट मचाए और जो सामने आए, उसपर सगीन लेकर भपट पड़े उह तो शायद पता भी नहीं चलेगा कि कब उनमें एक और आदमी आ शामिल हुआ है । इस डर और खतरे से बचने का सिर्फ एक ही उपाय है । तब वह खुद औरों के लिए एक खतरा हो जाएगा अपने जैसे कमजोर, मुलायम और डरे हुए लोगों को दौड़ा दौड़ाकर मारन वाला एक आतक सिर्फ बच-बचकर भागत, अपने को इस उस आड में छिपाते लोगों को इस माहौल में कोई जगह नहीं है

और अगर उसे यही जीवन जीना है तो किसी गिरती छत, किसी गोली, किसी सगीन या किसी उड़ते पत्थर-भाले का निशाना बनकर मर ही जाना चाहिए मर भी गया तो दुनिया में कहा क्या रक जाएगा ?

नहीं, नहीं, गुड्डी का बहाना भूठ है। वह अच्छी तरह जानता है कि गुड्डी बेहोश नहीं है, मर गई है। वह तभी मर गई थी, जब अपने घर की ही चौखट उसपर गिरी थी—भरपूर और बेरहम

इस भागदौड़ के वायजूद क्या उसे एक क्षण का भी समय नहीं मिला कि वह कबल खोलकर देख लेता, उसकी सास को महसूस करके समझ लेता कि उसमें कुछ घबा भी है या नहीं। लेकिन नहीं, उसने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया करना हा सकता है, इतनी देर से अपने बचाव की इस दौड़ का सारा भ्रम, इस वायरता की सारी गरिया चूर चूर हो जाती। जिन बातों और जिन भावनाओं को भीतर जगा जगाकर वह अपने आपको दौड़ाए जा रहा है, वे सब कहा में आती? फिर तो निश्चय ही हो जाता कि वह लाश को लिए लिए भाग रहा है। और तब इसे फेंकने के सिवा कोई रास्ता नहीं रहता या कहना चाहिए, निणय लेने की अनिवाय मजबूरी से बच निकलना असम्भव हो जाता उसकी यह सारी दौड़ किसी भी निणय से बचते जाने की दौड़ के सिवा और क्या है? तब ही सकता है कि उसे हमलावरो में शामिल हो जान का ही निणय ले लेना पड़ता वह भी उछल उछलकर लोगों को मारता ज़रूरत-बज़रूरत की चीजें छीनता और नो-बच्चों के नाज़ुक शरीर में घप् सगीन घापन का मज़ा लेता मुनत हैं निरकुश शूरता, और बं लगाम हिंसा का भी अपना एक नशा और आनंद है एक शब्दातीत थिल है—अगर य सब न होता तो आदमी में इतना जोश, यह उरमाह और शक्ति सामथ्य कहा से आत? कम से कम एक बार हिंसा के इस सुख को जान लेने में बुराई क्या है?

अभी तक इन लोगों में शामिल हो जाने की बात उसके मन में क्यों नहीं आई? इतना तो उसे भी पता ही था कि उसके आसपास ही कुछ लोग हैं जो चुपचाप इस तरह की ट्रेनिंग ले रहे हैं। कुछ स्थानों की सूचना भी उसके पास थी, जहां मारने, लूट लेने, आग लगाने या पीड़ा

करके दबोच लेने की शिक्षा दी जाती है। सुना था कि सबसे पहले व्यक्ति, देश, मानवता और जाने किस किसके भविष्य की सुरक्षा वाले धार्मिक विमर्श होते हैं—व्यक्ति को मानसिक रूप से ऐसे सिद्धांतों के आदेश और लक्ष्य समझाए जाते हैं, जहां ये सारे धार्य गतत न लगे। व्यक्तिगत रूप से की गई हत्या आदमी की आत्मा पर बोझ बनी रहती है, सिद्धांतों और आदेश के लिए की गई हत्या उस आध्यात्मिक शक्ति देती है। दोनों तरफ से व्यक्ति को अपनी पहचान को निकाल देना होता है। न आप व्यक्ति हैं, न वह जो मरता है। वह आपका नहीं, आपके आदेशों का दुश्मन है। अतः उसे हटा देना हत्या करना नहीं, महान् लक्ष्य को प्राप्त करने का एक प्रयास है। अगर इस ट्रेनिंग का वह धुरु से ही एक हिस्सा बन जाता—शायद आज यह परेशानी न होती। उसके दफ्तर और घर के पास पड़ोस के जाने कितने लोग चुप चुप बहा जाते थे, इसकी जानकारी उसे थी। कुछ ने उससे कहा भी कि अगर वह चाहे तो चल सकता है, मगर लापरवाही से उसने टाल दिया। हुह, हमें उस सबसे क्या? हमारी तो यही शांत जिंदगी ठीक है। जहां एक बच्ची से सारा घर जगमगाया रहता है। उसके साथ बिताने को चाहे समय न मिल पाता हो, लेकिन हर पल, जाने मनजाने नसों के भीतर कोई घुटनो चलता रहता है, किलक कर हसता है गोद में आने को मचलता है दूध न पीने की जिद करता है और बाजार घूमने के लिए हाथ पाव मारता है। सोती हुई बच्ची कौसी नहीं देव शिशु सी लगती है। सोचता था कि उसीकी मुस्कुराहट में जिंदगी का कुछ समय निकल जाएगा, हम छुरे तलवारों के खेल या ट्रेनिंग से क्या करना है? ताज्जुब होता था कि इस बच्ची के होने ने उसकी सारी बनावट में कितना बदलाव पैदा कर दिया था। वह कहीं भी कुछ क्रूर, गलत या झूठ करने का होता तो भीतर घुघुलके में एक निराकार हाथ उसकी कलाई पकड़ लेता वह अपने आपको इतना शांत, भरा व्यस्त और उल्लसित सा अनुभव करता रहता और कभी खयाल भी न आता कि कहीं कुछ लोग आसपास ही लूट पाट और मार पीट की ट्रेनिंग ले रहे हैं। कभी कभी किसी दोस्त से हसी मजाक या बहस करते हुए उसे अचानक ध्यान आता—हो सकता है यह भी वसी ही

ट्रेनिंग ले रहा हो। इस खयाल के साथ ही वह झटके से चुप हो जाता। फिर अपने आपको समझाता कि यह उसका भ्रम है। अगर यह वही ट्रेनिंग ले रहा होता तो शायद मुझसे ऐसे मुक्त भाव से न मिलता। और यह भी हो सकता है कि मेरा सम्पर्क ही इसके भीतर के किसी घोमल और मानवीय-भाव को जगाए रखे अब तो अफसोस ही होता है कि आसपास को भूलकर मुग्ध भाव से जीते चले जाने की कितनी भारी कीमत उसे चुकानी पड़ रही है। गुड्डी जिन्दगी को आनन्द उल्लास से भरने का स्रोत हो सकती है, जिन्दगी को बचाने का हथियार तो नहीं हो सकती। बच्चा सिर्फ साथकता दे सकता है, सुरक्षा नहीं। और यह क्षण तो अपने सबसे मूल्यवान और साथक को बचा लेने का है। चूँकि अपने साथक और मूल्यवान को बचाना असंभव और नामुमकिन हो गया है, इसलिए हमलावरों में शामिल होकर हरेक के साथक और मूल्यवान को समाप्त कर देना चाहिए—यह उससे नहीं हो पा रहा है। कमजोर, कायर, बुजुर्ग, कुछ भी नहीं, इस स्थिति में आकर वह 'उनका' हिस्सा नहीं हो पाएगा। उसके प्रारब्ध में सिर्फ बचाव की लड़ाई ही रह गई है।

उसे अक्सर आश्चर्य होता है कि क्या सचमुच इन लोगों के पास कुछ भी मूल्यवान और साथक ऐसा नहीं रह गया है, जिसे बचाने की बात मन में आए? तभी तो ये लोग दल के दल दूसरों के साथक और मूल्यवान को तहस-नहस करते, सूट पाट मचाते इधर से उधर दौड़ रहे हैं। हाथों में न सही, क्या मन में भी इनके कोई 'गुड्डी' नहीं है? रही तो जरूर होगी, लेकिन या तो इन्होंने उसे कहीं फेंक फाक दिया है, या अपने भीतर ही उसकी लाश को दफनाकर अब बनली बिघाड़ों के साथ सगीनें लेकर निकल आए हैं। जब अपनी ही गुड्डी नहीं रही तो वे किसी-की भी गुड्डी को जीवित और साबुत नहीं छोड़ेंगे। यानी इनका लक्ष्य मैं नहीं, मेरे हाथों का यह बडल है। यानी सारी आफत की जड़ यही है, करना मुझे मारकर इहे क्या मिलेगा? ओहो! कितनी सीधी-सी बात है, इन्हें कुछ लेना थोड़े ही है—ये तो सगीनों की रोगनी में सिर्फ उस मत्तोप की तलाश कर रहे हैं कि जो कुछ इनके अपने पास नहीं है, उस कहीं भी किसी दूसरे के पास क्यों छोड़ा जाए? उसे ही घाबर, इस बडल स

इतना मोह क्यों है ? क्यों नहीं दोना हाथ बढाकर कह देता—तो दोस्तो, जिस चीज की तुम्हें तलाश है, वह यह है। इन्हे कोचो, भारो, रौंदो, कुचलो, और मुझे चारो ओर से ठोकर खाती फुटबाल की नियति से छुटकारा दिलाओ यह न हो तो मैं भी तुमम स एव हूँ। फक कहा है ? मगर इतने से वे मान जाएंगे ? उन्हें कुछ भी चाहिए कहा ? उन्हें तो श्रायेट का सुख चाहिए

लेकिन नियति को चुन सकना, या यूँ झटके से बदल सकना क्या अब सचमुच उसके हाथ में रह गया है ? गुड्डी मर गई है या जिंदा है, नहीं जानता। उसके मर जान की सचाई का सामना न कर पाने की कायरता ही, हो सकता है उसे दौड़ा रही हो, हो सकता है उसकी यह दौड़ उसे कहीं न ले जा रही हो, और यह भी सच हो कि वह सिर्फ अपनी जान बचाने के लिए, जादुई ताबीज की तरह गुड्डी को लिए-लिए भाग रहा हो, और ताबीज का जादू एक चुटकी राख से ज्यादा कुछ न रह गया हो। इस सबको न वह अलग अलग करके सोच सकता है, न कोई निणय ले सकता है। सिर्फ इतना साफ है कि इसी बडल ने अब तक की इस सारी दौड़ को साथवता दी है

और वह तो अपनी एक बहुत भीतरी सतह पर सिर्फ इतना जानता है कि जरा सास लेने का मौका, सुस्ता लेने की सुरक्षा मिल जाए तो गुड्डी के शरीर की हल्की सी बची गरमाहट को भी वह जीवन में बदल सकता है। उसका मर जाना असंभव है और तब यह सारी यात्रा, अगारो से नगे पाव गुजरने की सारी यातना सिर्फ एक बीता हुआ दुःस्वप्न बनकर रह जाएगी।

लेकिन पहले उस भाडी तक तो पहुँचे

शिवप्रसाद सिंह

जन्म से लेकर आज तक कब गर्दिश नहीं रही, कब तपिश थमी, कब सुकून मिला, कब मनचाह ढंग से अपन छोटे मोटे लक्ष्यो को भी पूरा करने में सफल हो सका ? ये सवालालत मेरे मन में उठते रहे है और मैं चाह तो निराला के शब्दो में कह सकता हूँ—'रहा हारता स्वाथ समर'—गर्दिश चलती रही ।

पर आपको विश्वास नहीं होगा, यद्यपि आपमें से बहुतो ने किसी पत्र-पत्रिका में छपे मेरे फोटो को देखने के अतिरिक्त मेरे बारे में शायद ही कुछ और जानने की जिज्ञासा की हो, पर मुझे विश्वास है कि मेरे फोटो को देखकर आप उसी तरह ईर्ष्या में कह सकते हैं, जिस तरह मेरे अनेक सहपाठी और सहयोगी कहत हैं—हाय, कितना 'लकी' है यह आदमी ।

जो मेरे परिवार को जानत हैं, उनकी तो तोबा कीजिए । वे एक-साम में कहेंगे—'चदेल वारहो' में अपनी कीर्ति की ध्वजा गाडन वाले बाबू शिवटहल सिंह के पौत्र, जिनकी पूरे हजार बीघे की सीरदारी थी, जिनके खूटा पर चालीस बैन और दजनो गायें भसे बधी रहती, जिनकी गुडगुडी पर चित्तम भरने के लिए राह चलते कोई भी आदमी बुलाया जा सकता था, तीन तीन भोजो में छादनिया थी, वही शिवटहल सिंह न, जिनके घोडे न जिले भर में नाम कमाया ? जो हा, वही शिवटहल सिंह, जिनके बारे में कहा जाता है कि जब उहाने अपनी लडकी की शादी की तो ऐन विवाह के रोज बारिश हो गई । मेरे गाव की माटी काली है, बहुत कीचड बनता है । बारतियो ने कीचड वाले आगन में, जिसमें एक सौ आदमी पकितवद्ध बैठ सकते थे, बैठने से इनकार कर दिया । और आनन फानन शिवटहल सिंह के हुक्म से वखार में से निकालकर अलसी के दाने आगन में इतनी मोटी तह में फैला दिए गए कि आगन 'मोजेक' बन गया ।

रहा होगा शिवटहल सिंह का जमाना । मैं जब सिर्फ चार साल का

या उनका देहात हुआ। मुझे सिर्फ इतना याद है कि बाबू शिवटहल सिंह बुलद बंद के गुस्सेवर भादमी थे। खाने के शौकीन थे और जित भी औरत न फूलके दागदार कर दिए या सच्ची में मसाला कम कर दिया, उनकी पूरी तरह जानत मलामत कर डालते थे। ऐसे ही प्रसंग में जब वह मेरी छोटीकी भ्राजी को डांट रहे थे, मैंने 'ओ ओ ओ ओ' करके उनके गुस्से में निकल शब्दा की नकल की थी, अपनी भ्राजी की और से मैंने बारह गावों के सरनाम बाबू शिवटहल सिंह के दबदबे और रोव को बिरान की कोणिका की और वह गुस्से में विफरना छोड़कर मुझे गोद में उठाए हसत हुए घागन से बाहर चले गए थे। उस दिन छोटी भ्राजी ने मुझे गोद में लेकर चूमते हुए कहा—मेरे मेरे बाबू! तूने भ्राज मरी जान बचा ली।

भला ऐसे शस्त्र का पौत्र होना क्या इस बात का सबूत नहीं है कि मरी जिंदगी में गर्दिश के दिन भावन की भी हिम्मत नहीं कर सकन।

पर मैं भ्राज अपने परिवार को नजदीक से जानने का दावा करने वाला की भ्राजों के सामने में चौंधियाता परदा हटा देना चाहता हूँ कि शिवटहल सिंह का परिवार उनकी मृत्यु के सिर्फ बीस साल के भीतर एक सामान्य टूटती व्यवस्था और आयमनस्वता और कृतव्यमूढता में फन छटपटाते हुए बाबू गणेश सिंह का परिवार ही गया, जिन्होंने अपने पिता का शरीर नहीं, पर कृपा और दबदबा प्राप्त किया था। एँठ कुछ बीस ही होगी, उन्नीस नहीं। चुनट वाली घाती, साफ दपदप बुरता और मुरठा बाघकर जिला जीत घोड़े पर चलने वाले बाबू गणेश सिंह को मैंने बरसात के दिनों में घुटने बराबर पाणी में चलते हुए एक माव से दूसरे गाव की यात्रा करत देखा है ताकि वह भ्राजी और चमारों के यहा से उपले बटोर लाए, क्योंकि चालीस व्यक्तियों के कुटुंब के लिए खाना बनाने के लिए इधन गम की कोई चीज उपलब्ध नहीं है। मैंने गणेश सिंह को धायल साप की तरह फन पटकने देखा है कुछ भी न कर सकने की प्रियशता में लहरते पाया है। मैंने अपनी उन्न के बीसवें वय में ऐम गर्दिश के दिन देखे है जो बहुत विस्तार में बणन करने से ही पुर सकत हैं। मैंने गणेश सिंह के टूटते हुए शरीर में जमींदारी की टूटती हुई ऐँठने, फाकेकणी की स्थितिया और कलह का वह रूप देखा है, जिसे थोड़े में

बहना मुश्वल है। एक खून के लोगा के बीच चलती इस बीभत्स कलह ने मुझे बहुत तोडा है।

जब मैं बनारस पढ़ने आया तो तीन लड़कियों की शादी के लिए रहमानपुर का पूरा मोजा बिक गया था। छावनियों पर रहने वाले मेरे चाचा लोग अपने ही सच को जुटा न पाने का रोना रोया करते। ऐसे में मुझे जैसे लड़के के लिए, जिसने जमींदार खानदान में जन्म लेकर भी पाई जैसी चीज, बेहूदा चीज, की ओर ललक लगाई, शहर में भेजने के लिए गणेश सिंह ने विवाह के धाद बचे कुछ रुपये से उदयप्रताप कॉलेज में नाम लिखा देने की उदारता बरती। वह कभी भी मेरे मन को टूटते नहीं दगना चाहते थे, इसलिए यह मोचकर दिलजमई कर लेते और खुश हो जाते कि शहर की पढाई के लिए पचीस रुपये काफी है। जब वह मुझसे पूछते—का बचवा, काम चल जाई न? तो मैं इस प्रतिष्ठित परिवार के सरगना का यह प्रश्न सुनकर घुमटकर बरसने बरसने हो जाता, पर तभी अपने को सभाल लेता। मुझे लगता कि मैंने अपने पढ़ने की जिद करके हम परेगान और झूठी प्रतिष्ठा के भार को ढोने वाले व्यक्ति को कितने चक्कर म डाल लिया है। इस आत्मग्लानि से जब मेरी आत्मा कराह उठनी तो मैं अपने खानदान की उस अंतिम विभूति के सामने सरदन झुका कर कहता—जी हा। गणेश सिंह प्रसन्न होकर ठीक से रहने और सेहत का खयाल रखने की सलाह देते और मैं अपना सामान लेने के लिए बखरी में पहुँचता।

एक सारी स्थितियों से वाकिफ मेरी आजी चलते वकत एक छोटी सी पोटली मेरे हाथ में धमा देती—दूध पीह 5 5 ! वह कहती और करबट बदलकर मुह मोड लेती। मैं आजी के खानदान का वणन नहीं करना चाहता, सिर्फ एक प्रचलित और आज तक चर्चित वृत्तान्त बता दू। बाबू शिवटल सिंह जब अपने ज्येष्ठ पुत्र बाबू गणेश सिंह का विवाह करने के लिए पूरे जमींदारी स्तंबे के साथ बक्सर के पास स्थित चिलहरी गाँव पहुँचे, तो एक घास काटने वाली ने कहा था कि क्या यह कोईरी चमारा जैसी बारात अजुन राय (मेरी आजी के पिता) के घर जा रही है?

सो, मेरी आजी उस पोटली में कुल 15 बिकटोरिया वाले रुपये, जो

पर बीमारी चेहरा भले ही बदल ले, आश्रमण का वेग नहीं बदलती। विरला होस्टल में रहा तो कमरा नंबर 85 से पीछे खड़े खजूर के पेड़ को निहारता करता। मुझे बुखार मामूली नहीं चढ़ता। या तो चढ़ता ही नहीं और यदि चढ़ा तो 105 के नीचे रहना वह अपनी तौहीन समझता है। अब मैं सब बीमारियाँ का लेखा-जोखा क्या दूँ। जिस बीमारी ने मुझे आमूल बदल दिया, उसीका वणन शायद आपको पसंद आए। जी हाँ, दुखा की अजीब खसलतें होती हैं, अजीब मिजाज होता है, जब वे सिर पर चढ़ते हैं तो उनके जित्र से ही कपकपी पैदा हो जाती है पर वे जब छोड़कर चले जाते हैं तो उनके हमले का वणन करना खुशी की चीज हो जाता है।

8 मार्च, 1968। क्या दिन था! मैं एम० ए० हिंदी की कक्षा लेकर अपने कमरे में आया। उन दिनों डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पुनः हिंदी विभाग के अध्यक्ष होकर आ गए थे। मैं अपने कक्ष से निकलकर उनके कमरे में गया। कुर्सी पर बैठकर एक अजीब किस्म की घबराहट होने लगी। मैंने वेग से पनडबवा निकाला और एक पान खा लिया। पसीना आ रहा था और मुझे वेद गर्मी लग रही थी। तभी एक कौंध जैसी उठी और मेरे पूरे दाहिने भाग में विजली के करंट की तरह छूती हुई निकल गई। मैं बहुत घबड़ा उठा। मैंने पड़ितजी से कहा, मेरी तबीयत ठीक नहीं लगती। वहाँ प्रसिद्ध 'वाँटनिस्ट' डा० रामदेव मिश्र बैठे थे। पड़ितजी और मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा—आइए, नीचे मेरी गाड़ी खड़ी है, अस्पताल ले चलें आपको।

मुझे लडको ने, सहयोगिया ने सहारा देकर नीचे उतारना चाहा, पर मुझे अब बिरबुल सामान्य जैसा लग रहा था। मैं सीढ़ियाँ उतरता नीचे आया और डा० मिश्र की गाड़ी में बैठकर अस्पताल आ गया। लोग बाग माने नहीं, स्ट्रेचर पर रखकर ऊपर ले गए।

ब्लडप्रेसर 170, डाक्टर भुनमुनाया। पैथेडीन की सुई दे दी गई। सबकी कह दिया गया कमरे से बाहर चले जाए।

पता नहीं कार्डियोग्राम कौन सा नक्शा बना रहा था, मुझमें कौन चलाता। पैथेडीन लगाकर डॉक्टर निश्चित थे कि यह आदमी सो जाएगा

तब बाजार में बाइस रुपये आठ आने को बिकते, देकर मुझे दूध पीते रहने की सलाह देती।

मैं इन दमतोड़ स्थितियों के बीच, जो आर्थिक दृष्टि से कुछ कम कष्टप्रद थी, पर मानसिक रूप से बेहद पीड़ादायक थी, बनारस पगल लगा। इसी बीच परिवार टूटा। बाबू गणेश सिंह और उनके छोटे भाई बाबू बनवारी सिंह अलग हुए। फिर गणेश सिंह की मृत्यु के बाद मेरा परिवार टूटा यानी चार टुकड़ों में विभक्त जमींदारी का खड्डहर निरंतर गालियों और अट्ट बिल्लाहट तथा अमानवीय सघर्षों का केन्द्र हो गया। घर में घुसना मेरे लिए बहुत मुश्किल हो जाता। सच तो यह है कि मैं कुछ इस कदर कटा कटा रहता कि सबका होकर भी किसीका नहीं था। यानी मैं अपने पिता की ओर से बटवारे में बोलना भी गुनाह समझता था और इस भयंकर घुमडन में कभी छोटी आजी पकड़ ले जाती तो उनके घर खाना खा लेता वरना गाव से बाहर फली बघारियों में घूम घूमकर अपने को बकाता रहता। आप इन स्थितियों का साहित्यिक नक्शा डूटना चाहें तो आपको 'दादी मा' से लेकर 'अलग-अलग बतरणी' तक सैकड़ों जगह इसके बिखरे हुए रूप, थिंगलिया, पडे मिल जाएंगे। 'बीच की दीवार' इसकी शिनाख्त देगी।

मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढता था। बी० ए० का छात्र था। विरला होस्टल में रहता। मेरे गाव को जहाँ प्रकृति बरसात में भीमताल में बदल देती है जहाँ हरियाली और रंगारंग पक्षियों का कोलाहल बिलत को लुभाता है, वहाँ मलेरिया के कीटाणु खून में खनबलाते हैं। बीमार तो मैं बहुत पड़ा। कभी-कभी तो मैं आज भी टेनीसन की 'भागरेट' कविता की पवित्रा गुनगुनाता हूँ

तकलीफ बघा तू मेरे खून तक हो जाएगी हावी,
 घरे कभी तो हो जा प्यार-भरी जैस कि दुल्हन,
 धपना गुस्सा भरा चेहरा तनिक ना बदल तो दिलवर,
 ताकि बन सक् मैं भी आदमी नेक औ, मुनक्षण।

पर बीमारी चेहरा भले ही बदल ले, आक्रमण का वेग नहीं बदलती। विरला होस्टल में रहा तो कमरा नंबर 85 से पीछे खड़े खजूर के पेड़ को निहारा करता। मुझे बुखार मामूली नहीं चढ़ता। या तो चढ़ता ही नहीं और यदि चढ़ा तो 105 के नीचे रहना वह अपनी तीहीन समस्या है। अब मैं सब बीमारियों का लेखा जोखा क्या दूँ। जिस बीमारी ने मुझे आमूल बदल दिया, उसीका वणन शायद आपको पसंद आए। जी हाँ, दुखों की अजीब खसलतें होती हैं, अजीब मिजाज होता है, जब वे सिर पर चढ़ते हैं तो उनके जित्र से ही कपकपी पैदा हो जाती है पर वे जब छोड़कर चले जाते हैं तो उनके हमले का वणन करना खुशी की चीज हो जाता है।

8 मार्च 1968। क्या दिन था। मैं एम० ए० हिन्दी की कक्षा लेकर अपने कमरे में आया। उन दिनों डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पुनः हिन्दी विभाग के अध्यक्ष होकर आ गए थे। मैं अपने कक्ष से निकलकर उनके कमरे में गया। कुर्सी पर बठा कि एक अजीब विस्म की घबराहट होने लगी। मैंने बैग से पनडब्बा निकाला और एक पान खा लिया। पसीना आ रहा था और मुझे बेहद गर्मी लग रही थी। तभी एक कौंध जैसी उठी और मेरे पूरे दाहिने भाग में बिजली के करंट की तरह छूती हुई निकल गई। मैं बहुत घबड़ा उठा। मैं पड़ितजी से कहा, मेरी तबीयत ठीक नहीं लगनी। वहाँ प्रसिद्ध 'बॉटनिस्ट डा० रामदेव मिश्र' बैठे थे। पड़ितजी और मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा—आइए, नीचे मेरी गाड़ी खड़ी है, अस्पताल से चलें आपको।

मुझे लडको ने, सहयोगियों ने सहारा देकर नीचे उतारना चाहा, पर मुझे अब बिल्कुल सामान्य जैसा शग रहा था। मैं सीढ़ियाँ उतरता नीचे आया और डा० मिश्र की गाड़ी में बैठकर अस्पताल आ गया। लोग बाग माने नहीं, स्ट्रेचर पर रखकर ऊपर ले गए।

ब्लडप्रेसर 170, डाक्टर भुनमुनाया। पैथेडीन की सुई दे दी गई। सबको कह दिया गया कमरे से बाहर चले जाए।

पता नहीं कार्डियोग्राम कौन सा नक्शा बना रहा था मुझमें कौन चढ़ता। पैथेडीन लगाकर डॉक्टर निर्दिष्ट थे कि यह आदमी सो जाएगा

और उधर मेरे भीतर एक झंझावात तैयार हो गया। मेरा दिमाग पंचेडीन से लड रहा था। मैं बिल्कुल 'नॉर्मल' था। मुझे मित्रों के सहानुभूति भरे चेहरों ने लग रहा था कि मामला कुछ गंभीर है, पर मुझे न दब था, न परेशानी, न घबराहट। मैं अपनी नब्ब देख रहा था। डा० बाजपेयी ने कहा—

—जी। मैंने मुस्कराकर कहा—कई घंटे कोशिश पर तब नींद आती है।

मैं खिडकी में देख रहा था, मेरे बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थी झुंड के झुंड लडे हैं। सबके चेहरे उतरे हुए हैं, वे शायद मेरे पास ध्यान के लिए व्यग्र थे, पर रोक दिए गए थे।

पंचेडीन की दूसरी सुई।

मैं अब भी होश में था। पर आँखें बंद थीं। मैं देख रहा था, एक ट्रेन जा रही है। मैं प्लेटफॉर्म से उचककर उसमें बैठना चाहता हूँ, गाड़ी रुक जाती है। मैं आराम से एक सीट पर बैठ गया। फिर किसीने कहा—अब तो उतरिए। मैं उतर आया। मुझे नींद बतई नहीं थी, बेहोशी, चाहें तो कह लीजिए।

तभी मेरे अंदर से आवाज आई—गाड़ी पर चढ़ने और उतरने में कोई दिक्कत हुई ?

मैंने कहा—नहीं।

—बस, इस गाड़ी का ऐसा ही हाल है। ज़रूरत पड़ने पर दूसरी गाड़ी में बैठ जाना होता है। इसमें घबराने की क्या बात ! यह सब कुछ ऐसा सनसनाता हुआ सा लगा कि पंचेडीन की दूसरी सुई भी व्यर्थ गई और मैं आँखें खोल दी। मेरे सामने रखी बेंच पर डा० बच्चन सिंह बठे थे। खूब आसुदगी और विश्वास से बोल—कुछ नहीं है, आराम की ज़रूरत है। वह इस बेचारी से हसे कि मेरी आँखें चिलक आईं। वह उसे सभल न सके। उठकर चल गए।

खबर बिजली की तरह दौड़ गई। मेरी माँ को खबर मिली तो चबूतरे से गिर गईं। सारा बटवारा टहल सिंह का पूरा घर, गाव गया। मेरा साँस मुझे

देखकर किसी उत्सव जैसा लगा। गर्दिश सारी दीवारें तोड़ देती है, यह सान की किसी भी पक्ति जैसा लग समता है, पर यह कितना सही है।

9 मार्च, 1968।

सारे डाक्टरी यत्रो ने सिनारन दी कि मुझे कुछ नहीं हुआ है। सिफ यकात ह। गैस का थोडा प्रकोप था। मैं तीन दिन के बाद घर चला आया।

पर रह-रहकर वह प्रकोप हो जाता है, जब मैं चार घंटे से अधिक बैठकर लिखता हूँ। मैंने एक दिन ऐसे ही मे सैमुग्रल जॉनसन से पूछा कि मिस्टर यह क्या है? वह बोले—भाई सुनो, दुख जीवात्मा पर पडा, एक तरह का जग है। यह बीज वे नय विचार छोड जात है जो यहा से गुजरत हैं।

मैं दावे के साथ नहीं कहता पर मैं आश्वस्तिपूर्वक कहना चाहता हूँ कि मुझे बीमारिया ने जितना पाठ पढाया, सतही और गभीर दोनों, उतना मैं कभीभी पुस्तको मे प्राप्त नहीं कर सका। मैं चेस्टरफील्ड से सहमत हूँ कि यह एक तरह का टैक्स है, जिसे सबको अदा करना पडता है, किसीको कम, किसीको ज्यादा। परमैं इतना और जोड दूँ कि विचारो को गामदनी का यह टैक्स किसी भी लेखक को अनिवामत भरना ही हाता है।

आठ दस साल पहले की बात है। उस रोज पित विसजन था। और रविवार नी। दोपहर को खाना खाकर मैं लेटा तो मेरी पत्नी ने पैर पकडकर हिलाया। पूछने पर बोली कि उसे तब तक आठ दस कै दस्त हो चुके हैं।

मर् दिमाग मे अचानक फुस्स की आवाज आई। जैसे किसीन सलाई जला दी हो। सन् 1953 मेरे लिए दुखद वष था। क्या 1958 भी वैसा ही होन जा रहा है? मैंन दुरता पहना और डाक्टर को दूदन दौडा। 1953 म मन एम० ए० किया। कोई नौकरी नहीं थी। एक किताब लिखी 'विद्यापति' सिफ पद्रह दिनों मे और हिंदी प्रचारक को दकर एडवांस लिए पाच सौ रुपय। गर्मी बटी। पर आगे क्या हो, कोई रास्ता नहीं सूझता

था। पर स रिमच ज्वाइन करन था जुगाड नही बघ पाया। उदयप्रताप कालेज मे एक भवकागजय जगह पर पढाने जाता। गुट्टू होस्टल स दस मील दूर मौजूबीर। अगस्त था कोई दिन था। मैं कॉलेज स लौटा तो कमर म एक चिट्ठी थी।

मैंन अक्षर दमनर जान लिया कि गाथ स घाई है। उस चिट्ठी न अपन काले काले अक्षरों मे बताया कि भरा चार वर्षीय पुत्र और एक वर्षीय कया—दोना ही एक दिन हैजे स मर गए। मैं चिट्ठी लकर हक्का बकवा गडा रह गया। बदारनाथ सिंह गुट्टू ही रहते थे, हिंदी क रिमच स्कॉलर भोतमिरे भी। दोना मुझस बातें करने आ रह थे, कमरे म उनक आते ही मैं अपन को सभाल न सका और चौकी पर गिर गया। भरी भिची मुट्टिया म बदार न वह चिट्ठी निकाली और पनी। दोनो मेरे पास बिना साए दिए घटा बैठे रह। अब क्या पत्नी की बारी है ?

मैं रास्ते म यही सोचता डा० गंगासहाय पाडय के आवास पर पहुंचा। पाडेयजी ने मारी बात सुनी और तुरत अपनी गाडी निकाली और मेरे घर आए। उहान दवाए लिय दी। पंद्रह पंद्रह मिनट पर बारी बारी स दवा दी जानी थी। वह मुझे समझा-बुझाकर यह कहत हुए लोट गए कि कोई जरूरत हो तो नि सकोच आ जाइएगा। मैं प्रतीक्षा करूंगा। उस दिन रविवार था, दुकानें बंद थी। किमी कदर एक दुकानदार को घर स बुला कर दुकान खुलवाई और दवा ले आया। दवा दी जाती कै हो जानी, मैं बगमदे मे बेचल पदचारी करता रहा। तभी भीतर गया तो दसा पत्नी का सारा बदल काता पड रहा है और स्वास म घरघराहट की आवाज बड रही है। मैं पुन पाडेयजी क घर दौटा, वह गाडी मे बठ कही जा रह थ। मैं निरास हो गया। पाडेयजी जैसा बडा डाक्टर जो 32 रुपये फीस लता है, मेरी ओर क्या देखगा, मैंन साचा और वही मे मुडने को हुआ कि पाडेयजी ने पुकारा—डाक्टर साहब, क्या हालचाल है ? मैंने रमासा होकर कहा—अब शायद ही बचे।

—अभी अभी जैपुरिया के यहा किसीका एक्सीडेंट हो गया है, वही जा रहा था

—जी। मैंने कहा और लौटने को सोची। कहा जपुरिया, कहा मैं ?

—जा कहा रहे हैं ? आइए, गाडी मे बैठीए, पहले गाडी कामा कीठी जाएगी । मेरी आखें भरभरा आइ ।

मेरी इच्छा हुई कि डाक्टर की आखा मे देखू पर ऐसा न कर पाया । मनुष्यता के फूल की भी कसी अद्भुत सुगंध होती है ।

डाक्टर पाडेय ने ग्लूकोज की सुई दी । नब्ज पकडे बैठे रहे । सहसा आठ दस मिनट बाद पत्नी को खोर से जाडा धुरु हुआ और बुखार उभरने लगा ।

डाक्टर पाडेय ने अपना बैग उठाया । कमर से बाहर आए, बोले—खतरे से पार हो गई । अब कोई धराने की बात नही । मैं उन दिनों ऊपर पाकेटवाला बुरता पहनता था । मुझे मालूम नही, उसमे कितने रुपये थे । मैंने पाकेट मे हाथ डाला और सभी रुपये गंगासहायजी की पाकेट मे डाल दिए । वह एक क्षण मेरी ओर देखते रह, फिर उठोने वे रुपये निकालकर मेर पाकेट मे रखत हुए बहा—सकट मे औपचारिकता पर ध्यान न दें ।

मैं आज तब वह वाक्य भूल नही सका ।

मैं बाद मे जान पाया कि डाक्टर पाडेय न केवल बिस्वात चिकित्सक हैं बल्कि साहित्यकार भी हैं, पर उस क्षण वह मेरे लिए इन दोनो से परे एव ऐसे मानव के रूप मे खडे थे जिस में कभी भूल नही पाता और जो आज अत्यंत दुलभ पदार्थ हो गया है । मैं इसी सकट मे ही मानव पहचानना सीखा ।

मेरी दाई भगवान देई ने जिस निदय भाव से पत्नी के कं दस्त की सफाई की, उसने मेरी आरा के आगे से छोटे बडे के भेद का पूरा परदा हो खीचकर हटा दिया । आप उस नारी के वार में 'आखें' शीपक कहानी मे कुछ और भी ढूढ सकते हैं । मृत्यु का साक्षात्कार सभी तकली आवरण ताड दता है ।

उन दिना मेरी मन स्थिति विचित्र थी । अस्तित्वाद मेरे लिए ढाढस की चीज तभी बना । मृत्यु एक बडा प्रश्नचिह्न बनकर ललकार रही थी । मैंने उसकी चुनौती 'मुरदा सराय' मे स्वीकार की, किंतु सही अर्थ तो 1968 मे खुद बीमार होकर ही जान पाया कि मृत्यु एक सहचर है, सहयोगी

है। मर लिए गर्दिश अनी नी घबराहट पैदा करन वाली एक मजबूरी है किन्तु उसन अपन हथौड़े से पीट पीटकर मुझे एसा बना दिया है कि मैं उमयी आर म आर मिला सकता हू। उसवे आगमन की घटनाए, आमंत्रित और अनामंत्रित, इतनी हैं, कि मैं उस अतिथि न समझनर बगलगीर समझने लगा हू। और इम बगलगीर बे ये थोड़े-मे कारनाममैन इसी आगा से पेश किए कि गर्दिश दद भर प्यार की चीज बन सके। वस।

कृष्णा सोवती

वक्त को सज्दा किया हजार बार—

इस बार तो हा' हो—

हर बार एक ही आवाज आई—नहीं !

दास्ता, प्रगर विरासत म मित गई हो 'नहीं,' तो क्या कीजिएगा !
न किसीस कुछ कहिए । न मुनाइए । न दुख मनाइए । न दद को
सहलाइए । बस देखत चले जाइए जि'दगी की सीधी-सपाट सडक को,
जिसपर आपको चलते ही जाना है ।

मच पृष्ठि' तो 'गर्दिश के दिन' पर कुछ भी कहने के हकदार हम है
नहीं । न हमारा कभी हलकी फुलकी, सूबमूरत तलखियो से पाला पडा ।
न गर्दिश के दिना का रोमाटिक चक्कर चला । न प्याग् मुह'बत के
सलोने गम जि'दगी मे हमारी रहनुमाई ही धर सके । न किसीन हमारे
लिए तानोताज ही छोडा । न हमने कभी तर से किसी दास्ती स ही मुह
मोडा ।

फिर नी हुआ कुछ यू कि अपनी री' मे हम अपनी 'मै' को ही
पालने रहे । 'अहम' को सवाग्ने रह । लेकिन इम सबक वावजूद एक
चहुत बडी दुनिया से अलग अलग ही हम 'शनि' की रपतार से बधे अपनी
इकहरी मजिल की घोर मरक्ते रह ।

चाल इतनी धीमी कि धरती के तीस बरस और किसीको भी मय
ढालने वाले शनि का एक बरस । जिसने इसकी सरपरस्ती म दिन
गुजार हो वह इस बदनखोर मितार के हाथा पग पग पर पटखनिया
खाने का भादी हो जाता है ।

एक से जूझकर उठे कि दूसरी तैयार । दूसरी स सुख' हुए कि किसी
चोन मे कुलबुलाती एक और चली आती है ।

यही रपतार हालात की घोर यही, इसका बाला गाडा रग,

दूनरी वह जा हर दिन दिन क रवावा म सिर भुकाए पडी रही ।
टोकरें वसुमार खाइ मगर उस ढीठ न भी अपनी जगह स टलने का नाम
नही लिया । मैं दोना को एक दूसरे के आमन-नामने रख अपने को
पट्टचानने की कोशिस करती हू ।

अपनी परिधि मे कुछ और अबस भी तो हाग । कुछ परछाइया, जो
सग-सग रहती हैं । मिली जुली आवाजें जो दूर दूर तहरा पर तरकर फिर
दिलो के मुहाना पर लोट जानी हैं ।

मैं खिडकी मे उगत सूरज की ओर दखती हू और करवट लेकर फिर
आवें मूद लती हू ।

य न-ह-न-हे मासूम क्षण, जो हर सुबह, हर सूरज की तरह, हर घर
म जिंदा होत हैं, वे यहा नही हैं । यहा तो एक मैं ही हू । मैं ही । मैं एक
एहसास । एक पोशाक । एक ही दरवाजा, जिसमे मेरी ही परछाइ अदर
आती है, मेरी ही बाहर निकल जाती है । मुझसे ही सुबह शुरू होती है
मुभस ही शाम ।

शायद इसीलिए मुझे ऐस कमरे पसद हैं, जिनमे से मैं बाहर को जाऊ
तो कोई फक मालूम न दे । न यह लग कि मैं अभी यहा थी । न यह कि
मैं यहा नही हू । मेरे होने न होने के बावजूद कमरा अपने कमरेपन म
बधा रह ।

एस कमरे घरो म नही होते । जहा ये होत हैं, वहा आप गैरहाजिर
नही होते ।

आप सुग्रह हैं, शाम नही । आज हैं, कल नही । आप आन पहुंचे हैं,
तो ताली उठा लीजिए । जा रह हैं, तो ताली लोटा दीजिए ।

कई छोट प्रडे सफरा मे मैंने अपने इर्द गिद कुछ ऐसी आख मिचीनी
देखी कि अपन बजूट को ही गर समझ लिया ।

साहिबगज से मणिहारी गनी घाट पहुंचने के दौरान बोट पर भेलिंग
के सटार खड़े खड़े मैंने रात के अघेरे म अपने पूवज-मा के इतिहास उनकी
यानाए पानी की तरल सतह पर दख डाली । इही लहरा म पिघले-भीले
अघेरे म मैं तरती रही हू, लेकिन अब मुझ गगा पर लटके इस चाद पर

चला गया अपने मिजाज पर भी ।

मिजाज इतना गरीब कि गरीबी का शक होने लगे । दिल इतना अमीर कि अमीरी महज एक सलीका बनकर रह जाए । गुस्सा इतना तब कि पलक झपकते तबरे खनकने लगें । ठंडापन इतना कि सिर पर सतूफान गुजर जाए और इस पथरीले चेहरे पर शिकन न आए ।

अजीब सद गम, मिट्टी की तासीर वाली यह तस्वीर मेरी, खुद मुझे ही हैरान परेशान करती रही है ।

दूसरो की निगाह से अपने को देखती हू तो एक मगरूर, घमडी औरत, चमक दमक वाला लिवास और अपने को दूसरो से अलग समझन का अदाज ।

अपनी नजर से अपने को जाचती हू तो एक सीधी-सादी खुदा । वक्त और खुदा दोनो ही जिसपर ज्यादा मेहरबान न थे, फिर भी अपने जिगरे के जोर से जिंदादिल ।

हलकी हवाओ वाली सुहानी शामें, जिनकी याद मे हर इनसान का बच्चा अपने तन मन मे सुख जगाता है, कुछ पाता है । बार बार जिंदगी को लौटा लाता है वे घडिया जिंदगी के 'आउट स्क्वर्स' पर ही गुजर गई ।

फिर भी, दोस्तो, हमने जिंदगी के हाशिए पर अपनी बलम से बभी 'गम' का नाम नहीं लिखा । कभी तबीयत बहुत मचली तो अपने से यही कह दिया—न हुआ तो न सही । फिर सही । सच कहे तो यही ढिंढाई हमे पालती रही । इसे हमने अपने को सालन नहीं दिया—हमारा करतब, बस, इतना ही रहा ।

कभी-कभार ऐसा हुआ तो कम, मगर हुआ, मुह घघेर आख खुली कि अचकचाकर उठ बैठी ।

सुबह के अंधेरे और उजाले में अब तक की जी हुई जिंदगी खुद-बखुद दो हिस्सो मे बट गई ।

एक बह जो अपनी राह रोक सामने आ खडी हुई, तो फिर आखों के आगे से सरब जान का हट जाने का नाम ही नहीं लिया ।

दूसरी वह जो हर दिन दिल के रवावा म मिर भुकाए पडी रही।
टोकरें वेशुमार खाइ मगर उस बीठ न भी अपनी जगह स टलने का नाम
नही लिया। मैं दोनों को एक दूसरे व आमन-तामने रख अपने को
पहचानन की कोशिश करती हू।

अपनी परिधि म कुछ और अबस भी तो हाने। कुछ परछाइया जो
सग सग रहती हैं। मिली जुली आवाजें, जो दूर दूर लहरो पर तँरकर फिर
दिलो के मुहाना पर लौट जाती हैं।
मैं खिडकी स उगते सूरज की ओर देखती हू और करवट लेकर फिर
आखें मूद लेती हू।

वे नह नहे, मासूम क्षण जो हर सुबह हर सूरज की तरह हर घर
म जिंदा होत हैं, वे यहा नही हैं। यहा तो एक मैं ही हू। मैं ही। मैं एक
एहसास। एक पोशान। एक ही दरवाजा जिसस मरी ही परछाईं अदर
आती है मेरी ही बाहर निकल जाती है। मुझसे ही सुबह शुरू होती है
मुभस ही शाम।

शायद इसीलिए मुझे ऐस कमरे पसद है जिनम से मैं बाहर को जाऊ
तो कोई फक मालूम न दे। न यह लग कि मैं अभी यहा थी। न यह कि
मैं यहा नही हू। मेरे होने न होने के बावजूद कमरा अपने कमरेपन म
वधा रह।

ऐस कमरे घरों मे नही होत। जहा ये होत हैं वहा आप गँरहाजिर
नही होते।

आप सुबह हैं शाम नही। आज हैं, कल नही। आप आन पहुचे है
तो ताली उठा लीजिए। जा रह है, तो ताली लीटा दीजिए।

कई छोटे बड सफरो म मैंने अपने इद गिद कुछ ऐसी आख मिचौनी
दयी कि अपन वजूद को ही गँर समझ लिया।
साहिबगज से मणिहारी गली घाट पहुचन के दौरान बोट पर गेलिंग
के सहारे खडें छडें मैंने रात के अघेरे मे अपने पूवजन्मा के इतिहास उनकी
यात्राए पानी की तरल सतह पर दस डाली। इही लहरो मे पिघले-गीले
अघेरे म मैं तरती रही हू लेकिन अब मुझे गगा पर लटके इस चाद पर

पहुँचा है। यहाँ, यहाँ। उन कुछ पटा की यात्रा में मैं इन तारों से
 हमारे मं से जाने वाली देहरी को पहचान लिया था। डर नहीं लगा। तब
 कुछ ऐसा कि मुझपर मरी दहू गही है और मैं धरत धमाका की प्यास
 को जगाती हूँ। नहाती हूँ। नहाती पनी जाती हूँ। जो भर भर कुछ हम
 तरत कि मरी मुक्ति और मेरी प्राप्ति दती पानी म है। हमी धरत म
 है।

महंगा बोट पर पर रत गान की गध न मुझे मरी यात्रा गीत ली।
 धार्मिक हम म उत तिन धरत को दुवारा पन हा। दगा। त्रिग धार्मिक
 हम म मैं उत रात साना गाया हाता—मरी जैती धार्मिक रतन जात
 धादती ही पहचान पाता कि मैं वैश्वि हृषाया की रोतिणी त। हूँ—मैं
 तो यात्रा में पानी और मिट्टी म धनी हा—मात की सवरी हूँ।

उगरी त पर गेनी हूँ उगरी महरा म नहाई हूँ, तरी हूँ मरभाय
 म यही रवाती है तागीर म यही धनाता पाता है, मध ता य है गित
 यात्रा ही यात्रा का गाती है।

उसी तरह का रग इह देख छूकर उनकी आखों में झलकता है। जिन्दगी
स जुड़े रहने की चाहत, हर बार इह छूने में खाने में। उनकी निगाह में
यह पढ़ सकने की पहचान मरे पास है। पर उन जसी चाहत नहीं। मैं तो
इहे खाती भर हू। खाती हू और कुछ सोचती नहीं हू।

श्रामती पर मैं ऐसे कपड़े पहनना पसन्द नहीं करती जो मेरी शकल-
सूरत से वही ज्यादा कीमती लगें। कोई रेशम या रग श्रास पर चढ़ जाता
है तो बार बार उसे दोहराती चली जाती हू। मैं बार बार वही पहनती
हू जो मुझमें खप जाए, जो हलका हो और ढीला हो।

श्रमती में ज्यादा कपड़े मरा माथा गम कर देते ह। लगता है
मेरी बाहर और अंदर की सफाई पर कोई रग विरगी बूची फेर गया है।
फुटकर कपड़ों के गुच्छे जैसी 'मिडियाँकर' चीज काई और नहीं।
यह बात सजन के सम्बन्ध में और भी सच है।
सस्ता या महंगा क्वाड उठात ही चले जाना एक शब्द की जगह

दस इस्तमाल करना, एक इमेज की जगह विपरीत रगा की भीड़ लगा-
कर पाठको को भुलावे छलाव में डाल देना—न सिर्फ कम अच्छा लेखन
है, वह लेखन ही नहीं।
बहुत खींचिए तो लेखन का जुगाड भर है, असली लेखन नहीं।

खच करन का ढग मरा न बहुत छोटा है न बहुत बडा। मा स यह
सीखा कि जो भी खच करो, यह न लगे कि लुटाया जा रहा है। पिताजी
स यह कि एस खच करो कि अपन को भी खालिस जरूरत न लगे शीक
लग।

इन दोनों का मिला जुला रग मुझमें है।
कायद स किया जान वाला खच मैं शीक बना लेती हू और शीक के
लिए किया गया मट्टज जरूरत।
अपने लिए कम चीजें खरीदती हू। यहा वहा का छोटा मोटा रग-
विरगा सामान इकट्ठा करत जाना मुझे नापसन्द है।
कसकर इस्तेमाल होन वाला ठोस सामान ही मेरी आखों पर चढता
है।
कुछ भी खरीदने की तरह मुझे लिखन की भी कोई जल्दी नहीं होती।

पहचाना है। वहा, वहा। उन कुछ घटों की यात्रा में मैंने इस लोक में दूसरे में ले जाने वाली देहरी को पहचान लिया था। डर नहीं लगा। लगा कुछ ऐसा कि भुङ्गपर मेरी देह नहीं है और मैं अपने अभावा की प्यास को जगाती हूँ। नहाती हूँ। नहाती चली जाती हूँ। जी भर भर, कुछ इस तरह कि मेरी मुक्ति और मेरी प्राप्ति इसी पानी में है। इसी अधरे में है।

सहसा बोट पर पक रह खाने की गंध न मुझे मेरी काया लौटा दी। डाइनिंग रूम में उस दिन अपने को दुबारा पैदा होते देखा। जिस आदिम ढंग से मैं उस रात खाना खाया होगा—मेरी जसी आख रत्न याता आदमी ही पहचान पाता कि मैं वैदिक ऋचाओं की रोहिणी नहीं हूँ—मैं तो चनाब के पानी और मिट्टी से बनी हाड मांस की लडकी हूँ।

उसकी रेत पर खेती हूँ, उसकी लहरों में नहाई हूँ, तरी हूँ, स्वभाव में वही खानी है, तामीर में वही अनोखा पानी है, सच तो यह है सिर्फ चनाब ही चनाब का सानी है।

अगर हमें कभी भी अपनी गृहस्थी जुटानी होती तो घर में सबसे पहले लगता तदूर। मिट्टी के बरतनों की लगती फतारें। कनालियों में गूदती मैं आटा। चमेरो में रखती घी सनी रोटिया। और सोधी गंध वाले सालन पकाती मैं हडिया में। मेरे घर में दूध बिलोने की चाटिया होती। पानी भरने को घडे। बैठने को होनी रागली पीढिया और पसरने को होती सुतली की मजिया।

हमसे पूछिए तो गेहूँ की तदूरी रोटी पर घी मक्खन और धीमी धीमी आच पर पकी चापा की इलाही गंध, इनके आगे दुनिया की सब निया मर्ते फीकी हैं।

वैसे खाने की दूसरी बारीकियों की हम तमीज भी बहा।

हा, एक फल का शौक जरूर है, सेब। देखा है बचपन से इस फल की खूबमूरती घर की नब छोटी मोटी खुनिया से जुड़ी है।

इनका रूप रंग पिनाजी के नजदीक बटुन-बहुत लगाव की चाड है। जंस कोई अपन बच्चा का गहरे लगाव से, चाव से देखता है कुछ

उसी तरह का रग इह देख छूकर उनकी आत्मा में भलकता है। जिन्दगी से जुड़ रहने की चाहत, हर बार इहे छूने में, खाने में। उनकी निगाह में यह पढ़ मकन की पहचान मर पास है। पर उन जैसी चाहत नहीं। मैं तो इह खाती भर हू। खाती हू और कुछ सोचती नहीं हू।

आमतौर पर मैं एस कपड़े पहनना पसन्द नहीं करती जो मेरी गवन्द सूरत से वही ज्यादा कीमती लगें। कोई रसम या रग आप पर चढ़ जाता है तो बार बार उसे दोहराती चली जाती हू। मैं बार बार वही पहनती हू, जो मुझमें खप जाए जा हलका हो और ढीला हो।

भलमारी में ज्यादा कपड़े भरा माथा गम कर दते हैं। लगता है फुटकर कपड़ों के गुच्छे जैसी 'मिडियाकर चीज कोई और नहीं। यह बात सजन के सम्बन्ध में और भी सच है।

सस्ता या महंगा पचाड़ उठात ही चले जाना एक शब्द की जगह दस इस्तमाल करना, एक इमज की जगह विपरीत रगा की भीड़ लगाकर पाठकों को भुलावे छलावे में डाल देना—न सिर्फ कम अच्छा लिखन है, वह लिखन है ही नहीं।

बहुत खोलिए तो लिखन का जुगाड़ भर है, असली लिखन नहीं। सच करन का ढग मरान बहुत छोटा है न बहुत बड़ा। मा से यह सीखा कि जो भी सच करो, यह न लग कि लुटाया जा रहा है। पिताजी से यह कि एस सच करो कि अपन को भी खालिस जहरत न लगे शीक लगे।

इन दोनों का मिला जुला रग मुझमें है। कायद से किया जाने वाला सच मैं शीक बना लेती हू और शीक के लिए किया गया भ्रष्ट जहरत। अपने लिए कम चीजें गरीबती हू। यहा वहा का छोटा मोटा रग-विरगा सामान इकट्ठा करत जाना मुझे नापसन्द है। कसकर इस्तेमाल होन वाला ठोस सामान ही मरी आखा पर चढ़ता है।

कुछ भी खरीदने की तरह मुझे लिखन की भी कोई जल्दी नहीं होती।

कोई हड़बडाहट नहीं होती। यही कि कुछ लिखने को होगा तो लिख डालेंगे। न तिल सके तो हमारे दोस्त लिख डालेंगे।

एक जालिम सी तटस्थता दिल दिमाग पर बज्जा किए रहती है। चाहा बहुत, पर इससे छुटकारा न मिल सया। यही वजह है कि एक बहुत बडा वक्त खाद बनकर रह गया।

वरमो कोई रचना उगन का नाम नहीं लेती। कई बार ऐसा हुआ कि कुछ लिखन के लिए किसी कहानी उप ग्राम का कच्चा माल, उसका टेक्स्चर, हाथ के पोरो में महसूस किया। उसी रात यह भी हुआ कि पूरी की पूरी कहानी आखो के आगे जिग होती चली गई।

वस, लिखी जाने से पहले ही कहानी खत्म। ऐसी कहानिया उपयास में कभी नहीं लिख पाती, जो शुरू से आखिर तक ब्योरेवार मुझे बिना लिखे ही मालूम हो।

ज्या ही कहानी की कडिया मेरी आखा के आगे घूमी, खोज करने की, सघष करने की, मेरी गर्मी मर जाती है।

जहा कुछ डूब लाने का, डुबकी लगाकर पा लेन का, आश्चय न हो, उसे कलम से लिखना नितात बेमानी लगता है।

शायद इसलिए कि मैं किसी प्रेरणा या बाहरी दबाव से नहीं लिखती। मैं अपन समूचे होने मे रचकर, पैठकर जीने की तरह लिखती हू। उसी वक्त लिखती हू, जब लिख डालने के सिवा कोई चारा न रह जाए।

अपने अदर-बाहर, आगे पीछे, घटित हुआ, किसी एक लमहे म सिमट कर जब आखो के आगे डिठाई से ठिठक जाता है, तो हारकर कलम के तेवर उठाने को तैयार हो जाती हू।

बडी मुश्किल के दिन होते हैं और बडा मुश्किल से गुजरते हैं। जो निगाह मे अटक गया, उसे दिल दिमाग से तोल परख आप कुछ गडने बठ जात हैं। हाथ की मिट्टी को सम करते हैं, ठोक पीटकर देख लेते हैं और फिर वह सफर गुरू होता है, जिसे लिखना कहा जाता है।

लिखने वाले की हालत यह कि कुछ आसमान पर, कुछ पाताल मे। कुछ अपन अदर कुछ कहानी के। सच तो यह है कि लेखक और कहानी, दोनो की रूह मेज के आसपास भटकती रहती है।

ठीक स कह नही पा रही । जब तक जि दगी स होड लेती, जीती-जागती तस्वीर उठकर बोलने नही लगती तवीयत तकले की धार पर चढी रहती ह ।

अचानक आप कुछ और स हो उठते हैं । आखें ज्यादा साफ और दूर देखन लगती है । दिमाग चौकस और हाथ शब्दा के हीरे मोती समेटन लगत हैं ।

हर शब्द का एक जिस्म । एक आत्मा । एक गध । जिस चीज को हाथ स उठाया है उसका तस्कार उसका मिजाज उसके तमाम रस रखाव, लग लगाव तक से बाकफियत होनी होती है ।

लिखन के वक्त यह सब कुछ ऐसी बारीक धार पर चलता है कि अपने आपम एक जादू-सा मालूम देता है । आप लिखते हैं लेकिन महसूस करत हैं आप नही लिख रहे है कोई और लिख रहा है । आप यह दावा करना चाहत हैं कि लिख रह हैं तो कहानी के पात्र आपको खबरदार कर देत है कि आप नही साहब, हम हैं जो आपस लिखवा रहे हैं ।

सच कह, ऐसे वक्त या सामना करने की हम कोई जल्दी नही होती । न कहानी गुरू करने की, न खत्म करने की, न ही कहानी को जी डालन की ।

इंसान की जिन्दगी के इन गिन एकात क्षणो की तरह ही कलाकार के भी कुछ साथक क्षण होते है । व वही से तोडकर नही लाए जा सकत । न ही चाहने से पाए जा सकत है । उनके लिए तो बरसो इतजार करना होता है हालाकि वे हर दिन आपके तिल के आसपास जिया करते है । कभी कभार आपकी बेखबरी म ही आपके दिल का दरवाजा खटखटाते है और लिखने की सूरत मे आपस जवाब पाते है । भापा की सादगी नापा की जान है । यही उसकी मिठास और यही उसका असर ।

मैं डार से बिछुड़ी' का नाम लेना चाहूगी । एक दूसरा माध्यम थारा क यार' सा होता है । बडा खुरदरा और मदाग । जबान ऐसी कि पानी की तरह बहती चली जाए । हर शब्द स

एक स्थिति बत। एक नस्वीर उभरे। यहा तक कि गालिया भी उनके 'ग्रदर-करेंट को उद्वतित करें। उसके ग्रदर बाहर के खोल का एक सग वातावरण से बाध दें।

आपकी कलम तक तक यह हासिल नहीं कर सकती, जब तक आप जिंदा जवान न जीने हो। यह जवान न सब्दकोश की मदद ने गड़ी जा सकती है, न गलिया या भुग्गियों से उडाई जा सकनी है। उस तो अपनी रोजमर्रा की जिंदगी म आपको एक तीसरी आत और तीनरा कात लगादर सीखना होता है।

इन सबसे ऊपर और बढ़कर किसी भी अच्छी रचना के लिए एक और चीज की जरूरत होती है जिसे हर जानदार चीज की हट्टी कहा जाना है। इसके साथ ही वह घनत्व भी, जो रचना की मिट्टी म मौजूद होता है।

मित्रो मरजाती एक सुली डुली, जिंदा गरमाहट थी जा आपके गुलेपन मे कुलीनता के चौखटे से टकरा गई।

'मित्रो को जानने के लिए मुझे न सिफ उस वग के खोल स परिचित होना था मुझे गोडना था उस वग की जडो तक की नी। ताकि वह सब जान सकू जो आख से दीखता है और जो गही दीखता। इन दाना की गहगई से, बिल्कुल अनदीखते ढग मे, इन कहानी क डाइमसन म धर सकू।

साहित्य और कता के क्षेत्र मे श्लील और अश्लील के प्रश्न को दूल देना मुनासिब नहीं।

लथावथित नैतिकता और धम की चौखटो के बाहर इंसान की नि दगी का एक बहुत बडा हिस्सा फैला पडा है। उसकी उम्मीदें, आत्याए उसनी कमजोरिया, प्यार और आदिश सधप। इन सबको किसी एक के नाम पर छोट देना, उन्हें किसी दायरे स बाहर कर उसपर फमले दना मुनासिब नहीं।

साहित्य और कानून की निगाह एक नहीं हो सकती। साहित्य जीवन का दपण है जिन्गी की बदिग नहीं। यह अलग बात है कि कला का एक आंतरिक समय होता है बदिग होती है, जो कता के बनाव को चढाव का,

खुद ही सहजती समटती है। मृत्यु का अपन में सजाती है और उन खुले-पन में पनपने देती है।

मित्रो मरजानी' और 'प्यारो के प्यार' के मुकाबले में 'सूरजमुखी' की नापा बाहर की नहीं अंतर की है।

पढ़ने में ज़रूर अतिरिक्त सतकता का आभास देती है। कहानी में कथा की जो अपनी मजबूरी थी, दरअसल, उसीने इसकी समूची राय को बाध लिया था।

सजन के स्तर पर आत्म का एक मूड होता है, इस में 'सूरजमुखी' लिखकर ही जाना है।

'सूरजमुखी' मरनी के अंधेरे नकार में नहीं, आत्म करुणा में नहीं, वचन हो जान की उस सपाट स्थिति से उभरे है, जहाँ जिन्दगी में टूटने की हो जाने का नाटकीय बोध तक नहीं।

बलात्कार केवल वानून की दफा नहीं, मात्र रस भग ही नहीं छोटे बच्चा के अधकचरे खेल भी नहीं, अमंगल लहर की वह टटी आसग स्थिति है, जिसे अपन चाहने से स्रोत तक लौटा लाना जन्म-जन्मांतरो सा ही अनिश्चित है। शायद इस बार इस बार प्यार करने की दुविधा नहीं, किनार पर फैली सूखी लहरों तक पानी न आ सकने की असमर्थता।

रोमा केसी और कमू के गम्भिर दण्ड म रस्ती को जो दीखी है, वह है झुटना गए जीवन की आमकिन—आमकिन और आसक्ति।

इसी छटपटाहट में जी सकने की व्यास और व्यास और भग हा गई लय का तिलमिलाहट-भरा बोध। मैं—मुझे—मुझे ही क्या नहीं—मैं भी जो हूँ।

व्यक्ति की इकाई में धस गए आक्रमण का पुराना आतंक।

रस्ती की देह के द्वार पर उमका आत्मादर छिन हुआ है। उसका समूचा साधना आत्मरक्षा के स्तर पर है।

आत्मरति का मवाल नक नहीं उठता, क्योंकि वह आत्माबहेलना से पीड़ित है। आत्मस्लाघा नहीं, उसमें आत्मसजगता है। उसके पास अपने बारे में यह जानकारी भी कि जिस अनोखे आनंद की अनुभूति मानवीय तन की सबसे बड़ी प्राप्ति है, वह उम तक पहुँचने में समर्थ नहीं। क्योंकि

उसके इस स्नान पर दूब नहीं दूह हैं ।

प्रेम जस रोमांटिक शेड का उसके निकट कोई उपयोग नहीं । वह नाजुक रहस्य भर चुका है ।

रत्नी जैसी औरत अपने सदपन में सिर्फ जान पहचान के दाव कर सकती है । सेक्स के कुदरती बहाव में उन्निभग सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती ।

वह पुरुष के भीतर दया या हिंसा पैदा करती होती तो वह यहाँ बहा मिल जाने वाली हर वह औरत होती, जो पट्टे अपनी दया से पुरुष की हिंसा पकाती है और फिर पुरुष की हिंसा से अपनी दयनीय स्थिति को मजबूत करती है ।

रत्नी यह औरत नहीं है । रत्नी बचपन के पारदर्शी काच के टूट जाने में घायल रह व्यक्ति है, जो सम्बन्धों की परिपक्व जमीन पर सुरक्षा के तबू नहीं गाड़ पाता । उसके आत्मकेन्द्रित द्रव्य में एक ही चीज उसके हाथ रागी है । वह है वरहम आख, जो एक साथ समानान्तर रेखाओं से दोना दिशाओं की देस अन्न बिंदु पर लौट आती है ।

रत्नी के पास यह नहीं होती, तो रत्नी के आगे नितात दूसरा रास्ता होता—उसके अपने आत्मभावमूल्यन में फुहारता आत्म विनाग ।

गदली हा गई स्मृति मन से उतरकर तन में सिबुडन की तरह उन रत्नी चलती जाती है । सुखा देती है, रसा देती है हर बार लहराके सात वा ।

इसलिए रत्नी की आत्मावण क भाव में अपने सुनसान जगल पर वह पूजा जगानी पड़ी । उसके निकट वह दिवाकर के साथ सान वा केवल संयोग नहीं था, संभोग भी नहीं वह था दिवाकर द्वारा उत्ती का रत्नी से जोड़ देने का नितात साधारण और असाधारण वह बिंदु, जो अपने पतले घनत्व से अब तक रत्नी को झुठलाता आया था ।

दिवाकर के पाम थी रत्नी को खोज लेने वाली एक नजर भर । दिवाकर इतना ही था । रत्नी का भी इतना ही चाहिए था । बराबरी के एहसास में एक ऐसा कोण बना था, जो एक साथ सो मक्ने की एक और सं प्राथना थी दूसरी धार से चैलेंज था । इयम रोमांटिक प्रेम के भीने गेड' दूढ़ना बंकार है ।

‘सूरजमुखी का एक दिलचस्प किस्सा सुनिष् । ‘सूरजमुखी’ के कुछ ही पन्ने बाकी थे । एकाएक दिमाग ने सोचना बन्द कर दिया । जतन किए, मगर सब ठप्प । बस, जैसे बल्ब घाउट’ हो गया हो ।

क्याकि दिमाग हमारा ही है, सो हम एक-दूसरे की डिठाई का खूब समझते-जानते हैं, तबसे पहचानते हैं ।

एक हृदय तब हमने इसरार किया, धाबिदर तग आकर हृयिमार टाल दिए ।

बनम बन्द की और कहानी आखो मे ओझल कर दी । इसी कसमकस मे कई दिन निकल गए । एक ही आदमी के दो हिस्से एक दूसरे का दम-खसम आझमान को तैयार ।

एक मुसह जो उठे तो आता म पूरा पठार अकित था । केवन उम मोनी की जगह सपन म मरे अपन ‘ईपरिग’ थे, जिह सपन म मैने ऊची चट्टानो की ढलान पर से नीचे गिरते देखा था ।

अगली रात सपना मैंन कागज पर उतार लिया ।

कई बार ऐसा हुआ कि अचानक आमा के आगे कुछ आ सजा हुआ और सच होकर रह गया ।

एक बहुत अजीब दोस्त एक रात मुझे अचानक ऐसे दीखे कि मैं उनके लिए गुलाब खरीद रही हूँ, बस इतना ही ।

मुबह उठते ही मानम हुआ कि गई शाम दुनिया से खसत हो चुके हैं—चुपचाप तयार हुई और फूल तन चल पडी ।

मानना ता नही चाहती कि एसा शकसर सच ही हाता है, पर होता तो है ही ।

भूठ यह भी नहीं कि अपने सम्बध म यही आख कभी मदद नहीं करती ।

‘धारा क मार’ की मुनिष् ।

आप लोग की दुआ स कहानी खत्म हुई ही थी । कहानी का नाम देन का कलम उठाई, तो बस अटक गई, चली ही नहीं । कहानी क्याकि गानियो से नमकीन थी, मो दो ही नाम नीट पलटकर मेरा फँसला खट-

खटात रहे । नवर एक 'हरामजादे' और नवर दो 'उल्लू के पटठे' ।

बड़ी कोफ्त हुई । बहानी का सारा सतुनन एक ही बजन के दो पलडा पर अटक गया । न यह जचे, न वह ।

सैर साहब, एक दिन मुह अघेरे जो करवट ली तो याद आया, नीद में जनपथ पर घूम रही हूँ । सपन में जिस दुजान पर खडी थी, उसके बौड पर लिखा था—'घारा के वार ।

करीब चौबीस घटे मैंने इस नाम को अपनी हृद के बाहर कर दिया । अपन पास फटकन तक नहीं दिया ।

दूसरी रात सोने से पहले छोट मोटे कामा के बहान मेज के इद गिद मडराती रही । अपन को उकसाती रही और आखिरकार एक बजते न बजत बहानी का नामकरण हो ही गया ।

जैसे ही शीपक दिया, तबीयत उदास पड गई । नाम कटानी पर हावी हो गया था और मेरे आमन सामन इतराने लगा था ।

नाम बयोकि कहानी का मौजू था, इसलिए मजतूरी की इस हालत में भी इससे पगा लेने से मैं बाज नहीं आई ।

मैंने तीनों नाम एक ही पकित में लिखे और लावारिसों की तरह मेज पर छोड दिए । आखिरकार जब कलम चली, तो नाम वही रहा, जिस रहना था ।

अपने साथ इस तरह के चोचला से मेरे मिजाज और मेरी तासीर का जायजा लिया जा सकता है ।

यह किसी सितारे या ग्रह का असर नहीं, जैसा कि मैंने कभी पहले लिख दिया है ।

शताब्दी भर आतस इस डीलडौल में खुद ही जो मौजूद है ।

बस एक ही बात की मेहर अपने पर हुई कि मुद्दतो के बाद जब जब कुछ करने को उठे तो फिर तबीयत से, खुले दिल से, बिना कौर कजूसी के, कोताही डिलाई के काम को सर अजाम दे सके ।

यह हिकमत या खूबी हमारी नहीं । यह जादू किसी दूसरे का ही है । उसका नाम चाहे कुछ भी ही ।

जब कभी काम में होती है तो चाय कॉफी कम कर देती है और दूध पीन लगती है ।

मज पर बढिया कागज का ढेर दीखता रहना चाहिए ।

बुठ भी गुरु करने से पहले कागज खूब फटा करते है ।

पहली पकिन उठाने की धवराहट और तनाव इसकी वजह होते हैं । लगातार घटा कभी नहीं लिख पाती । ज्यादा स ज्यादा एक घटा । एक बार मेज छोड दन के बाद लिखे हुए के बारे म कुछ भी सोचने की इजाजत अपन का नहीं देती । ऐस वकन दा मुग्नलिफ नाकतें एक टूमरे पर हावी रहती हैं ।

मैं मूद को शक की निगाह से देखने लगती हू । ढूढ-ढूढकर अपनी सीमाशा और कमडोरियो की याद दिताती रहती हू अपन को । बडे विलचस्प ढग में अपनी आखा के आग इनकी भीड लगाए रहती हू । एक तरफ दुस्मन की तरह अपन पर सरती करती हू, दूसरी आर जा भी चाह और जो कर सकू, अपने लिए मुह्य्या करनी हू ।

अपने और तिम्पन के बीच सिफ शिष्टाचार का नाता ही रखती हू । न उसके बारे म ज्यादा सोचती हू, न अपने पर छा जाने के लिए उस उकसाती हू । और न ही उसे अपनी आखा पर बिठानी हू ।

दिना दिमाग के शीशा का साफ करन के लिए सिफ एक 'छोटा' । दो' और बटा' कभी नहीं ।

अपनी अपनी लीक पर अडे, एक दूसर के तापमान स बधे हम इस तरह शीकिया ही मजबूरी की हालत में लिखने का सफर तम करते चले जाते हैं ।

रग-ढग कुछ ऐसा पाया कि देखने वाली स 'ठीक ही है की निगाह और दम्बन वालियो में 'समझ क्या रखा है का भ्रमना मामना होता ही रक्षा । अपना चलन क्योंकि एक ही पटरी पर रहा, इसलिए गगा-जमुनी तरेरें नवर और परिहास न्यग्य के तीर तरकस अपन में भ्रमर टकराते ही रह ।

यह ता सच न होगा अगर हम कह कि इनके लिए हमारा बलेजा

छलनी ही हुआ, लेकिन, दोम्नो, इस तिलसिले में बड़े बड़े जालिम और मासूम चुटकुले अपने हाथ लग। और अपने ही इस मामले में निहायत सजीदगी से अपना नहीं, दूसरा का साथ दिया।

एक पार्टी में हमारा तीर-तरीका देख किसी भली पुरखी सुरागिन ने हमें फूल छड़ दे मारी।

बड़ी प्यारी, दूध की घुली, अम्मीजान वाली नज़र से हमारे छाट-बड़े माप देखे और मुलायम आवाज़ में कहा

—आपको गान बजाने का शौक मालूम देता है।

जैसे ही हमने मतलब भासा, हमने बड़ी हलीमी से हसकर खास अपनी नज़र का कैमरा उनके हाथों में थमा दिया। और एक बड़े वाद एक अगली पिछली तस्वीरें खिचवाते चले गए।

उस शाम को सबसे साफ तम्बीर जो उजागर हुई, वह कुछ यूँ थी

कि हम सज़े-सबरे, हाथ में भीनाकारी वाली सुराही लिए, कुछ उड्डेले चले जा रहे हैं। (कहा, क्या, यह न पूछिए !)

हम मातूम था यह 'मित्रो मरजानी' वाली बतरन नहीं थी, जो अपने चेहर पर चिपकाई जा रही थी। यह खालिस रंग तो उस घरेलू नज़र का था, जिस मुझसे न कोई शिक्वा था, न शिकायत थी। उस गह लक्ष्मी ने तो फकत अपनी मुबारक चौखट से हमारे जैसे बेघर बाहर वाली नाचीज़ को देखा भर था।

हमने बुरा नहीं मनाया। मनाए भी तो क्या! नेकनामी का रंगा अपने को कभी रहा भी नहीं। वे लाखों जतन, जो इस नेकनामी के लिए आदमी करता ही चला जाता है अपनी हृद के बाहर ही समझिए। साहब, जिसकी रिहाइश लाल डोरे के बाहर हो, वह पचो की राय अपने माथे पर काहे चढाएगा? वह तो एक ढीठ बच्चे की तरह लापरवाह हो जाएगा। किस्सा कौताह यह कि वह आज़ाद हो जाएगा।

'मित्रो मरजानी' के बाद हुआ कुछ ऐसा कि चार लोग हम ही 'मित्रो' समझने लगे।

'घारो के चार' के बाद बातचीत करते कुछ ऐसा इनज़ार भी रहने लगा कि अभी बोलचाल में ही गालियों के नगीन जड़ने लगूंगी। वैसे मुझे

उनसे कोई परहेज नहीं। आजमा कर देखा है, चीज काफी पुरअसर है।

'सूरजमुखी' तक आते आते यह मान लिया गया कि मैं अक्सर पिए रहती हूँ। और अमुक यह है वह है, और वह है। कई सीधी तादी दोस्तिया इन हल्ले में रगीन हो गई।

हम वही क वही पुरान गाव की मिट्टी के वने और शहर न पले। दिल्ली को महानगर कहने की हिम्मत हमारी कहा। हा, यह सब है कि गाव और शहर की सब खूबिया और कमजोरिया हमम एक साथ मौजूद हैं। खुलापन, तो जी भरकर। शहर का मुलम्मा, तो वह नी जी भरकर। हमें इसकी तसल्ली है कि हमन कभी किसीका 'टिप' न कम दिया और न ज्यादा। हमारी नजर में जितना बडा गुनाह कम देना है, उतना ही बडा फूहडपन ज्यादा देना भी।

सब कह तो अपना देहातीपन हमने अपनी आत्मा में बचा रखा है, और शहरीपन अपने तौर तरीके और लिबास में।

दुनिया की सब छोटी बड़ी नियामतो के मुकाबले मैं गहू की रोटी पर हजार हजार बार फिदा हूँ।

घपाती खूब अच्छी बनाती हूँ, तवे और तदूर, दोनों की। जीमी प्राच पर बिना पानी का गोस्त और भी अच्छा।

हा, हम घरतू कामा में कतई दिलचस्पी नहीं रखत, लेकिन हाथ में कोई भी काम करने में हमारा जी उलझता है, न सहत ही गिरती है। नौकर नौरानी की मदद न रहने के पुराने पचडे पर अपने घर का दस्तरखान ही वीरान कर डालने वाली 'सहीदी' हमारे 'फोड' में नहीं।

अक्सर सपनों को भुठला जा देता है। शायद यही वजह है कि ऐसे सूखे में मैं छोटी से छोटी हरियाली को किसी भी खजान से ज्यादा कीमती समझन लाती हूँ। किसी भी हरे टुकडे को इस हद तक चाब स जीती हूँ कि उमीने जिंदगी की भरपूर हरियाली महसूस कर सकूँ।

अपन को किसीके साथ क्योकि कभी बाटा नहीं है इसलिए लौट-पलटकर अपना बिंदु मैं खुद ही बनी रहती हूँ। अतः ही मुझे दूसरा को जानना होता है इसलिए अपन में बनी भूल मुलमा में पिधरस काकिर अदर मैं ही मैं हूँ। इमारत क्योकि भरी पूरी नहीं इसलिए हर बार

पुकारने पर गुब्बद से टकराकर एक ही आवाज आती है— मैं । मैं ही । मैं ही । मैं । मैं

वह कसमकस यहाँ नहीं, जिसमें व्यक्तित्व की विपरीत दिशाएँ उजागर होती हैं और आपकी उस बड़ी म पिरो गेती हैं, जहाँ आप कभी बड़े होते हैं, कभी छोट । आपकी लेन देन की, जमा तफरीक की, दे दन की और न देने की—ले लेन की और खोस लेन तक की तालीम मिलती चली जाती है । जाहिर है, ऐसी सतरगी धारिया अपने में हमें कभी नहीं दीखी । इस तरह के व्यावहारिक मामलों में हमारी हालत निहायत सीधी सपाट होन की हृद तक बोर है । जो हम चाहत नहीं हैं, नहीं चाहन । और जो चाहते हैं वम चाहते हैं ।

इसका दूसरा पहलू एक और भी है ।

आपके पीछे आपकी कोई कतार नहीं, इसलिए आप हर सामने वाली कतार को, भीड़ को, समझने की कोशिश करते हैं । हर चीज के दोना पहलुआ को तटस्थता से जाचन की जुगत करते हैं । रिश्ता फिर भी आमने सामने का रहता है । साथ साथ जुड़े हुए लोगों का सा नहीं ।

यू अपनी सत्ता को, अपनपन में बरकरार रखने में भी एक हल्का सा नशा है । लेकिन, दोस्तों, कभी, किसी मौके पर आपको सिर्फ इमदाद की ही जरूरत हो, तो वह आपको न मिल सकेगी । अगर आपने अपने इद गिद सम्बन्धों का जाल नहीं बिछा रखा, तो आप हर मामले में अकेले हैं । हमसे पूछिए, तो यही वह अहसास है, जो आपकी खुदी को तराशना चला जाता है ।

मैं बराबरी की दोस्ती ढग से निभाती हू । क्योंकि कभी छोटे थे नहीं, बड़े कभी हुए नहीं, इसलिए यह अदा आज तक पाले हुए हैं ।

हम क्योंकि किसी भी साहित्यिक गुटबंदी के बाहर हैं, इसलिए हमारे सभी अदबी दोस्त हमें हमेशा गम जोशी से मिलते हैं । साहबों, इस 'इंटेलेक्चुअल' बिरादरी में अगर किसीको फायदा न दे सके, न किसीस कुछ फायदा ले ही सके, तो उसे बेमतलब कौन याद रखता चला जाएगा इसका अहसास हमें है ।

हम यह दोस्ती के खिलाफ नहीं, अपने हक में बह रहें हैं ।

हमें मन ही मन इस बात का गुमान है कि हमें न अपने पाठका न शिवायत है, न आलोचकों से और न ही अपने प्रकाशकों से।

यह 'त्रिलठी' बड़ी मुश्किल से बघती है, इसलिए इस नाजूक रिश्ते से हम ज्यादा छेड़ छान नहीं करते।

पाठक कम हा तो हा।

आलोचक कभी रोम आकर कोई उनीस बीस बट्ट दें, तो कह दें।

प्रकाशक छापने में देर करे, तो करे। किताब न बिके, तो न सही।

इन सबको 'साधने' और सहने के लिए हमन छाती पर पत्थर नहीं रखा हुआ। लेकिन साहब, हम खूब मालूम है कि एक अच्छे लेखक का ज़िगरा बड़ा और हिंसाब कमजोर होना चाहिए।

कामयाब आदमी और कामयाब लेखक के रास्ते यकीनी तार पर अलग अलग है।

हम सीधे-भाधे लोग अच्छे लगते हैं। गामतीर पर यही ब लोग होते हैं, जिनकी आंखों में आप इंसान की खुशियां, गमा, उम्मीदा, आम्थाआ का असली रूप-रंग देख सकते हैं। अजीब बात है आदमी जितना ही ज्ञान विज्ञान मनोविज्ञान से लैस होकर वारीकी से जिदगी को देखने का समझने का दावा करता है उतना ही जिदगी से दूर होता चला जाता है।

मेरे एनबम में ऐसे लोगों के चेहरे हैं, जि हैं मिलकर, जानकर मैं कुछ ऐसा पाया, जो किसी किताब में न पाया। जिदगी के प्यार न सराबार जिदगी से जूझने की सामथ्य, सपप कर सबन का जीवट रोने और रुलाने के बहाने, मजदूरियां और विवशताआ के गहरे कटाव, छोटी-छोटी, खूबसूरत खुशियों की बुनी जाली इही लोगों के दिल के सामने उगती है, पकती है और बट जाती है। यही वे लोग हैं, जो अपने आसपास की दुनिया से अपन होने को पहचानते हैं। अपन जिन को जानते हैं। लेखक एक दूसरे सिरे से बाहर वाली दुनिया को परखना है, पहचानता है। फिर रसी जिदगी को दुवारा साहित्य के लिए बाध सेना है।

वे लोग मेरे दोस्त कभी नहीं होते, जिह हर दिनत बपडे क नीच

कोई जिसमें ही नजर आता है। उठी हुई बाट गुज्राने की तत्पर और हर जिन्दगी औरत आत्मी जापर शर शाला की तैयारी में मग्न होकर है।

एक व साथ एक जुड़ी छाना घाल माहौल में घायल हया और धून पीता हर आकार इन्हें बिगो त बिनी म फगा उजर आता है।

मैं यह यकीन करता था कि इस रानी परदेगाभा की तब तक सभी जग नहीं लगा। मैं भी कुछ तावत है इस माहौल के निकले की तो शालन की। अपनी अपनी छाना पर जिन्गी की धूप तब तक की।

मैं गुलम घूमता पसंद करती हूँ। बंधे बंधाए प्रोग्राम नहीं। रानीघन जा रही हूँ तो मन हो जान पर आवाती उतरा जा सपता है।

रामगढ़ की ओर गए तो फिर पैदन ही मुक्तारर। एक बार नौदु-छिया ताल में कोसानी पहुच गई। सापर जी त नरा था—वही भटका रहा था। त्रिगूल को मुह्र भधरे दसा। साम को भी। रान भासें मुदा तो नौदुछिया के निजन किनार रात भर आगा पर पहरा दत रह।

गमक गई क्या चाटती हूँ। लोटवर वही पटुची। पूरी दुपहर ताल किनार पगडडी पर घूमती रही। नौदुछिया में पानी नीला था और किनारा स भटा वीरान सूनापन। एक साली मूनी 'वॉटन म नीले रग पर ईमा को लटके दसा तो पाव जड हो गए। आमपास कोई एसा दद था, जो हृद स गुजर जा के याद बेदद हो जाता है।

दार्जिलिंग में बलिगपाग जाते कोरोनगन 'ग्रिज' पर से मीत को झुटला जाने वाले अपने इराद से सामना हो गया था। एक क्षण कितना लम्बा हो सकता है मैंने इसको कभी नहीं जाना था। तित्सा और रणजीत के उफात पानी और गहरी निलाई में पडत भवर, किनारों पर छाए घन पेड और ऊपर चमकती सभा की धूप। जैसे किसीने मुझे जकड लिया था। यही यती यही

उस शाम दार्जिलिंग लोटवर मैंन किसी अदृश्य की पीठ दी थी।

उलहाजी से राजियार जाती बालाटोप और डैन कुड। आसमान को छूत चीड और दूर दीखती नदियों की अलग अलग धाराए। वही, एक

बहुत ऊँच पड़ को बल्ल होत दखा ।

टूटत बटत उस पेड़ की भी क्या जान थी । कुल्हाजी तले कुछ ऐसे
कि भारत चलो—खडे हूँ—न राडे रट सकेंग तो गिर जाएगे । मर जाएगे ।

पुगनी बात है । एक गाम भुवाती के डाकबगले मे चाय ले रही थी
कि पास खडे खानसामा की आखो मे मैन जान क्या पढ लिया । वह एक
लमहा था जिसन मुझे वादला के घेरे' की मन्तो से एक कर दिया ।

खानसामा के ख्याल म मैं एक मरीज थी और 'सिनेटोरियम' मे
रहन आई थी ।

मैन अपन सहतमद होन के डिपेंस मे सूटनेस की ताली खानसामा
को द दी और गुसल लगा देने को कहा ।

खानसामा ने यकीन न करन वाली नजर से देखा । कुछ कहने को
था कि मैन खोजकर कडे स्वर मे कहा—पानी तेज गम होना चाहिए ।

'टॉबेल स्टड पर मुयरे दा तोलिए, सानुन, गम पानी

एकाएक भयभीगी सिहरन बदन मे दौड गई । कैसे नहाऊगी ?
नहीं । यह बीमार जगह है । साफ जगह नहीं ।

बीमारी के कीटाणु और लबा, बेरहम इलाज फस पर रँगता हुआ
मेरे बदन म सरसराने लगा ।

न गुसल किया, न हाथ पाव धोए । बाहर निकली और खुले म बैठ
गई ।

खानसामा को कोई हँरानी नहीं हुई । एक-दो बार ताजी चाय
दी फिर अदब से कहा—हजूर अब अदर जाना ठीक होगा । सरदी
आपके निग ठीक नहीं ।

मैने तिलमिलाती निगाह फेंकी तो जबाब मे रहम ही रहम था ।

बडे ही मजे मुलायम अदाज मे कहा—ठीक ही जाएगी, हजूर—
ऊपर डाक्टर बहुत अच्छे हैं ।

मैं खानसामा को नोच लेना चाहती थी । मेरे खिलाफ उसका फँगना
अटन था ।

अदर आई—विस्तर देखा कि बीमारी के ख्याल से तटपन लयी ।

खानसामा की बुलाया और तब तक भरी घायाब म कहा—हमारा सामान समेटकर सुबह भीमताल पहुँचा दीजिएगा। हम यहाँ सपाच बजे चल देंगे।

—जो हृषम, साहिब !

मैं एक साथ अपने यदन में पैदा होती बीमारी की सहम और खान सामा की अनुभवों घाँगा में अपने लिए बेमतलब तरह महमूस कर सिबुटन लगी।

उस रात त्रिभुल नहीं गई। कमरे की मनहूस दीवारा पर खान सामा की घालें बार बार विद्रुप करती रहीं।

सुबह की घाय्र खाने के पहले मैं तैयार हो चक तब बसकर गया आई थी।

सामान और कुली के लिए पैग द मैंने खानसामा को भरपूर तगरा और इनाम का नोट उसकी ओर बड़ा रीबीले अंगुल से कहा—खानसामा साहब, हम उस बीमारी के मरीज नहीं, जिसका आपको शक है। खुदा न करे कभी हो। बस आपने हम रात भर के लिए जहर मरीज बनाकर ही दम लिया।

खानसामा का अदब कायदा उनकी इमदाद को भा खड़ा हुआ।

—गलती के लिए माफी हुजूर। शक यू गुजरा कि रजिस्टर में नाम भरते आप कुछ सोचने लगी थी। खान का मकसद पूछने पर आपन कहा, हम कोई काम तो यहाँ नहीं, रानीघेत जा रहे थे रास्त में उतर गए। गुस्तारी माफ, हुजूर, भुवाली पर कोई सैलानी क्यों उतरने लगा।

ऐसे 'एगिल' की पर बटी आख की हमने बहुत बार लोगों पर भपटते देता है।

तुबका एक ही तीर था।

अपनी अधी खुदबीन से जिसे देखा जब देखा, उसका आधा हिस्सा ही गायब हो गया। सच पूछिए, तो जिन्दगी और जिन्दगी जीने वालों की बेशुमार तह ऐसी हैं जिन्हें कानी आख नहीं देख सकती। अपने को अपने ही तग, छोटे दिल से आजाद करना बेहद जरूरी है। साहित्यकार के निकट यह पहली शर्त है। सिर्फ वही न देखे जो सतह के ऊपर दीखता

है। वह भी जाचे, जो दीखता नहीं है और तह के नीचे है। अधी आल का साहित्य साहित्य नहीं, खिडकीबाजी है।

एक कड़कडाती दुपहरी। सजियार से पैदल चवा। तपती चट्टानों पर पाव जलने लगे। हलक सूखने लगा। गर्मी से निढाल हो ही जाती थी कि मोड़ पर से इरावती का तेज पानी दीख गया। दौड़न लगी। इरावती में डुबकी लगाऊंगी, जो भर भर नराऊंगी।

नीचे किनारे पर पहुँचा तो पाव गम चट्टानों पर ही जम गए।

इरावती का वेग मुडती धारा का हरहराता धार—खतर न मेरी आँखें लीप दी थी।

दरियाओं के सुहाने बहुत पानियों की बात सोच-सोचकर सुल जाता है कि हम भी पदा हुए एस ही भागीभर, अलबेले दरिया के किनारे। उसकी शोष, जवान कहानियाँ जहान में मशहूर हैं।

मीठा, अनोखा नाम उस दरिया का—चनाब। चनाब के किनारे हर बरस बैसाखी के मेले जुड़ते। दुधरी आचला वाली माया की झालियाँ में नये बच्चे सुच्चे गुलाब की पखुडियाँ में चनाव का पानी चखते। नय कोरे कपडों में जहा की तगडी ताजी मुटियार कंधे उठा चलनी। जहा ऊँचे, हट्टे कट्ट गबर तहबद के परलू लटकाए छेता की रसवाली वरते। जेहलम और चनाव के बीच की धरती पर यही कड़ावर जने हाड मास और लहू के पड बन जाते।

वही, उम आवभरी धरती पर, हम भी खेला किए।

आँखों में खूब जाने वाली दुन्दिहें। ठस और नखर से पडे उठाती, मनकार वरती बाह, तहूर पर भुकी गारी, तपत रग वाली मुटियारें—वो धरती, वो फमलें, वो दरिया, वो लहलहात दरियाआ के किनार—सब छूट गए।

अब उस धरती की बरबतों को कौन जीन जी माये से लया सकया ? कौन उस पानी को होठों से छुआ मकेगा ?

सियासत ने कुदरत के रास्त बदल डाले। दरियाआ के रत्न पलट डाले। बतनों के नक्शे बदल डाले। कौन जाने उन राहों की राहदारी

बच लुले ।

धन लुलेगी ? जब पुरानी यादा का सजाकर रमन वाले घडवत दिन मिटटी हो जाएग ? बुझा पर छाह दत पुरान पीपल सिफ पढ बन-कर रह जाएग । दरियाया व चेहर सिफ भूगोल के नाम—शायद तब दोना धार स फाटक लुलेग

बहुत दर हो चुकी उस पानी को छुए—उस हवा को पिए ।

एक राज की बात बताए । उस पापी और हवा को हमन लोहे के एक सडूक म बद कर रखा है ।

इसका खोल मैला हो गया है । बदरगी भी । फिर भी इसे खोलन की हिम्मत नहीं होती ।

इस सडूक स मुझे आज भी पकी फमलो की गध आती है । धूप म सरमो की वासती धूनर दीखती है । उन बच्ची, सगी राहो को गुजाती घोंडा की टाप चुन पडती है । रहटा की सुहानी लय मरे काना पर डुक जानी ह

इस सडूक म उस धरती की सुशबू बद है ।

उस पुराने लिखे उपयास को खोलन की हिम्मत नहीं होती । अपन को लाख डराया है, धमकाया है, फुमलाया है, पर कुछ भी बारगर नहीं होना ।

अपन आगे आप ही बेबस हू ।

फिर भी इतजार है उस घडी का—जब जिंदा हाथो से उसे खोल सकू ।

दोस्तो, जिं दगी मे कभी खुत गया तो फिर मुलाकात होगी ।
खुदा हाफिज ।

मैं मानता हूँ कि मुझे दुख देना मैं ईश्वर का कुछ 'वस्टड इटरेस्ट' है क्योंकि मुझे दुख देकर वह बहुतों को एक साथ सुख दे सकता है। दूसरी बात यह है कि सतत अनवरत गर्दिशें कुछ इस कदर मेरे 41 वर्षों में आती रही हैं कि समझ नहीं पा रहा हूँ क्या भूलूँ और क्या याद करूँ। दुख और सुख घुल मिल गए हैं जीवन काल और सफेद का एक मौजूद डिजाइन बन गया है जिसमें काल रंग के कारण ही डिजाइन उभरता है—शायद जीवन सिर्फ सफेद और रंगहीन हो जाता। मिडिटा-क्लानी सुख आते रहे हैं और भाग गए हैं। जीवन में नई गर्दिश आती है तब सब काशस में एक विचार कौंध जाता है कि शायद यह तो मैं पहल में एक दफा जी चुका हूँ। दुनिया के लोगों के लिए तकलीफ याद दास्त के कोन में स निवातकर सजा कर साफ सूफ करके फम करके दिखाने की एक चीज है एक सर्टिफिकेट है मेरे लिए तकलीफ बीता हुआ बल नहीं है ऑक्सीजन की तरह सतत है, नई सात की तरह नित्य पदा होती है और गर्दिश में एक गुण है—तबीयत अच्छी रहती है। मैं दुःखाल हूँ वाक्य को अर्थ मिलता है।

लेकिन जीवन में एक एक बार ही आता है—प्रथम चुवन या अंतिम साम किशोरावस्था या 39वाँ वर्ष या छाती की घुटन फाड़कर फूटा हुना प्रथम सफेद बाल। और जबानी नामक एक शब्द—जिसका मेरे लिए विल्टुन प्राक्पण नहीं है यथोक्ति जीवन के अंतिमतम दिन तक वह मरे साथ रहने वाला है। बीस वर्ष पूर्व शुरू हुई बहुत सारी समस्याएँ सुलभ चुका हैं फिर स नई वाजिया सजाइ नई समस्याएँ पदा कर ली क्नाकि बिना चिन्ता समस्या गर्दिश वालों पशु जिन्गी मेरा लक्ष्य कभी नहीं थी। और आज भी नहीं है।

22 वर्षों में 23 पुस्तकें लिखने के बाद मैं सोच रहा हूँ, मेरे लखन

मे गर्दिश का क्या हिम्सा है ? जीवन के रगापन में गर्दिश के दिन घुलन रहते हैं। आज बारहवा उपवास लिस रहा हूँ, अब तक मेरे प्रत्येक उपवास के नायक की उपाधि 'शाह' रही है। नायक की उम्र उम्र उपवास निरत समय मेरी जो उम्र थी, वही रही है। नायक, मिठा दो एक भ्रपवादा के, मेरी ही तरह नाटा, माता, चेहरे पर चेचक व दागा वाला रुक्ष, हमशा हारन वाला, बिना बहन या पुत्र वाला, गरीफ बदमाश, अस्तित्ववादी, भावसवादी, भास मद्य खाने-पीने वाला, गालिया बकने वाला, गुारातिया की नपुसकता से नफरत करने वाला हिन्दी गुजरानी अप्रेजो वाली मिश्रित भाषा बोलने वाला, धम में आन्था रखन वाला, शांती की सस्था में श्रद्धा रखने वाला बारबार खूखार हो जाने वाला पुष्प बताया गया है। उसमें से चद्रकाल बक्षी को नफी कर दिया जाए, और जो शेष रह जाए उसीमें से गर्दिश के दिन घटा लिए जाए तो गूय रह जायगा।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय—1919 के आसपास—मेरे पिता कलकत्ता में स्थायी हुए थे और 1969 में—पंचम वष वाद में कलकत्ता छोड़ दिया, जब मेरी उम्र 38 वष की थी। यह शहर हडिडया के प्रवाही तब जा चुका है। गदा, बदसूरत बडवे तेल और टुगली के मटियाले पानी की बू वाला कलकत्ता मेरे शरीर में सक्नी निकल नहीं पाएगा। पितामह पुलिस के फौजदार थे पिता जोहरी थे, मैं प्रोफमर हूँ—कुटुब की रस्म हैं हम बक्षिया की। हमारा इतिहास चौथे पुष्प का सिर सहन नहीं कर पाता, चौथे पुरुष का जन्म होता है, तब जिदा तीन पुरुषों में से एक को मारना पडता है—पिछले सौ वषों से उन तरह होता रहा है। अभी चार पुरुष जी भी रहे हैं और, मैं बहमो को नहीं मानता।

याद नहीं है किना छोटा था, एक बार कलकत्ता से जन्मभूमि पालनपुर गया था। घर की पुरानी दीवारों पर पूवजों के चित्र थे। पुष्पों के चेहरे खूबसूरत लग रहे थे और जवान। परिवार की स्त्रिया बढाए थी। बडा हुआ, तब समझ पाया कि हमारे कुटुब में पुष्पों की

तम्बोरें मूबमूरत हैं, क्याकि वे जवानी म मर जाते हैं। स्थियो चहरा पन भुरिया हैं, क्याकि उह तबलीफें केननी पडी हैं, पूरी जिन्दगी छोट छोट लडका को प्रादमी बनान की। बहन नहीं है। कई वर्षों तक भाभी, काकी मामी मौसी म त कोई नहीं था। 13 वष की उम्र म ही एक भयकर आपान घा गया और मैं बालिा बन गया। पिता की मृत्यु। लडकपन क दिन लडकपन म ही समाप्त हो गए। किशोरावस्था मैं नहीं दानी। कुटुंब जीवन की सात स्वल्प दुनिया छुट गई—धनिक म गरीब होन क दिन गुन हो गए। मनुष्य न कलाकार होन का तजुबा गुरु हुआ। समझ नहीं पा रहा हू कि कनकता के बडा वाजार क व्यवसाय म छनकत घर म साहित्य की हवा कहां न आ गई। निकट के या दूर के कोई भी परिचित स्वजन साहित्य-कार नहीं हैं स्कूल म या घर म सही गुजराती भा नही बोली जाती थी और हम एक ही परिवार के तीना भाइ (बडे जीहरी है छोटा भाई० ए० एम० है) नियमित और उच्च स्तर के क्या-तक है—गुजराती साहित्य म ऐसा पहल कभी नहीं हुआ है।

जीवन म थोडा कायर होता तो मैं कुछ रपादा सफल हो जाता भौतिक दृष्टि स। बहादुरी ने मेरा बहुत नुकसान किया है। आज मोचता हू तब लगता है कि दिमाग के अदर की दीवार पर बहादुरी का 'स्टोनिंग' हो गया है जस पिछली उम्रमे दात के अदर हो जाता है। और इस स्टोनिंग का रग तीत्र निराशा का है। मेरा निरतर हसत रहना मुझे बहुत महगा पडा है लोग मर दुख को भी नफरत और इर्ष्या की दृष्टि स दफत ह। दुनिया न मुझे 'विश्वाद योग के शौक का अधिकार भी नहीं दिया है। बहादुरी एक कवच बन गई है। बुद्धि के तन म 'शाक एब्जावस' नहीं रहे उसीकी उलझनों आज मुगत रहा हू। हमारी मशीन चाहे जितनी भी अच्छी हो दुनिया न हमारे लिए रास्ते इतन ऊबड खाबड बनाए हैं कि गाक एब्जावस न हो तो दीड नहीं सकते। और 'ट्रजेडी' इस बात की है कि कलाकार के चित्ततन मे 'सोमोग्राफ की 'सैंसिटि-

विगी होती है, वहा 'शाक एब्जावस काम नहीं आते।

विसो भी एव स्कूल में लगातार तीन वर्ष पढाई नहीं हुई है। कलकत्ता और उत्तर गुजरात का छोटा पालनपुर। द्वितीय विश्वयुद्ध आया, कलकत्ता से भागना पडा। फिर गए, फिर 1946 में कौमी दंग हुए, स्कूल बंद हो गए। फिर कलकत्ता छोडा, पालनपुर से स्कूल न प्राप्त किया। फिरसे कलकत्ता—सेंट जेवियस कॉलेज। इटर साइस फस्ट क्लास में पास किया, नेवी में कमीशन की काशिग की, आखें खराब थी। प्रॉमोटे किया चले जाना था, वहा के 'इमीग्रेशन मिनिस्टर' से पत्र-व्यवहार किया, उत्तर मिला—सिर्फ इटोनेशिया के छात्रों को ही अभी लेते हैं। पूर्व अफ्रीका जाकर शिक्षक होने की सोची। 26 मील 385 गज की मैराथन दौड के लिए चार वर्ष लगातार 'प्रैक्टिस' की—और अतुभव से नात मिला कि होटला में खाकर लगातार तीन घंटे दौडने से 'ऐथलीट' नहीं हुआ जा सकता। 'बी० एस-सी० विद एप्रोक्त्चर' करके शिक्षित वास्तुकार होने का विचार किया, हो नहीं पाया। बी० ए० 'डिस्टिक्शन' के साथ पास किया, पूरी यूनिवर्सिटी में सिर्फ दस बारह लडका को 'डिस्टिक्शन' मिला था—दृष्टि गई आई० ए० एस० की तरफ और यथाथ न 'अन एप्लॉयमट ड्यूरो' की कतार में खडा कर दिया, 'ड्यू काड लेकर चला आया। 'भ्यूजियम' की लाइब्रेरी के लिए फ्रेंच सीखने का प्रयास किया—मासिक आठ रुपये तनकराह मिलने वाली थी, पाठ टाइम सेवा के लिए। टाइपिंग की पहली लाइन सीख ली, फिर रजाल आया जीवन में 'टाइपिस्ट नहीं बनूंगा। 'सॉलिसिटर' की फर्म में कुछ काम किया। ट्यूशन, बेयर बाजार में सौदे जोहरी बाजार में छट महीने एक प्रिंटिंग प्रेस, सडक पर रूमालो की बिना, मित्रों की गदियों में सोना हावडा स्टेगन की बेंचो का उपयोग रात को सोने के लिए। विस्मत का कुचक बडी तेजी से घूम चुका था, मुह के कोना पर भाग उभर आए उतनी तेजी से। पिता के घर में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने के पहले भी टेलीफोन था—बी० बी० 1082, और फस्ट क्लास में सफर किए थे। फिर भागा, बम्बई आया दवाआ के बाजार में काम किया साल भर—'सलफाडायजीन क डिब्ब उठाकर भ्यूनिवर्सिटी के आफिस में डिलिवरी दे आने का। चरवेति धरवति—शास्त्रा में जो कहा है। फिर नासिक का मिलिटरी

स्कूल —स्ववॉर्ड ड्रिल और हॉस राइडिंग और एल० एम० जी० 'वस्ट-
 कडट' का 'सर्टिफिकेट' छाती पर भुलाकर फिर कलकत्ता की सड़का
 पर— और लॉ कॉलेज । तीन वष का अन्यासक्रम ढाई वष म समाप्त
 करके फिर वम्बई वकालत करन के लिए । कहा गया था कि डिग्री लेकर
 आ जा तरा नाम 'श्रीफ' पर लिखा दूगा और महावार पाच सौ रुपय
 तेरी आमदनी गुरु हो जाएगी । वम्बई म मिला—उपहास, मौजब,
 और फोजरी, चोरी फिर पलायनवाद । अगर कम्युनिज्म का रग

लगा न होता तो आत्महत्या कर ली होती । उस समय किसीने अगर
 हाथ म राइफन पमा दी हाती तो आखें बंद करके पूरी दुनिया को 'शूट'
 कर दिया होता । बारट निकलने वाला है—मित्रो ने कहा । और घरा
 मे रख लिया । प्राखिर पल्ला घर बसाया—सोनागाछी म । सोनागाछी
 कलकत्ता का मराहूर, बदनाग वेश्याओ का दलाका है । घर म पाच तिथि
 जैन धम पालन वाल सस्नारी गुजराती परिवार का नबीरा आदमी हो
 चुका था—मुर्गी लाकर काटकर पकाकर खाकर, हजम करना मैं सीग
 चुका था ।

बाद मे बहुत घर बदले । जीवन मे कोई काम सीधा नहीं हुआ और
 हमेशा पराजय ही मिलती रही है । हसते रहन के व्यसन क कारण जीवन
 सहा जना है और तबीयत चुस्त रही है । रेडोमड बपटो का स्टोर खोला,
 कुछ वर्षों चलाया । 1947 का वष कुछ नये कामा का गवाह है । पाच
 मिनट मे पाच रुपय मे वम्बई म रजिस्ट्रार के वोट म एक अपरिचित
 लडकी से शादी कर ली क्याकि वह अग्रेजी म भागड सकती थी । कुछ
 हेट एट फस्ट साइट' जैसा ही । और प्रथम उपयास का आरम्भ
 किया—सोनागाछी के उसी पलट मे । मुझे भय था कि मैं गुजराती
 भाषा भूल जाऊगा । याद आ गया कि बी० ए० म गुजराती म 100 म
 से 83 अंक मिले थ । अपनी गुजराती जि दा रखन के लिए भी मुझे कुछ
 लिखना चाहिए—और आत्मकथा का बज्ज न भी कुछ असह्य सा हो चुका
 था ।

प्रथम कहानी लिखी । तब उम्र थी 10 वष । गुजराती की उस समय
 गर्दिश के दिन / 111

की प्रमुख पत्रिका 'कुमार' में छपी। उसी समय से आज तक आलोचक भौंकते रहें हैं मैं गालिया बकता रहा हूँ। उहीम से कुछेक बहुत समझदार लोग भी हैं। मेरी कृतिया की ज्यादातर आलोचनाओं का मूल्य मेरे लिए, व्यवहार किए गए 'सनिटरी टॉयला' में ज्यादा नहीं है। खैर, आज तो यह हालत बनी हुई है कि बिना मेरा नाम लिए गुजराती क्या साहित्य की बात नहीं हो सकती। अकारण में चचास्पद हो जाता हूँ, क्योंकि बड़े मायालु शत्रुओं का एक काफिला मेरा ध्यान रखता है।

घर बदलते रहे। पहली बच्ची 'स्टिल-बान' होकर मर गई, दूसरी 'सोजरिअन' स। फिर लाया पीया और राज किया और 1969 का वष आया। 1957 में जो घट चुका था, वही सब कुछ। फिर रिस्मन का कुचक्र पराजय की हवा, और—

तू फिर आ गई गर्दिशे आसानी,
बडी मेहरबानी बडी मेहरवानी।

कलकत्ता छोड़ दिया, स्टोर बेच डाला, अहमदाबाद चला गया—यहूदी जिस अहसास से इजराइल जाता है वैसे ही अहसास के साथ। दो रोज म ही कौमी दगे भडक उठे, अठारह दिन 'कपर्यू' में सपरिवार फमा रहा। जीवन के लगभग सभी महत्वपूर्ण निणयो की तरह मिनटा में तय किया, बम्बई में स्थायी होना है। डेरा उठाया—चलो बम्बई। और कभी वपों पूव एक सनक आई थी और व्यवसाय करते-करते ही एम० ए० की डिग्री ले रखी थी, वह काम आ गई। इतिहास और राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर का कामयोग शुरू किया जो चल रहा है। बम्बई में घर लिया, शाम का 'फाउटेन' से लौटते समय घर भूल गया—पुलिसवाले को अपन ही घर का पता बताकर पूछा। एक बार पहले भी इसी तरह कुछ हुआ था 'स्टीमर' से शराब पीकर टैक्सी में आ रहे थे और दर रात तक घर ढूँढते रहे थे

इही सबको ही कहते होंगे गर्दिश के दिन ?

मैंने आठ वर्षों तक—1948 से 1956 तक—सगातार रोजाना डायरी लिखी है। उसीमें देखता हूँ—गर्दिश का फैशन कितना बदला है।

गर्दिश मेरे लिए अभिमान की बातें करने की चीज नहीं है। अगले साल पढ़ना 'रश्वोरेस मेन्चोर' हो जाएगा, और वज्र बफादार भाये की तरह साथ साथ ही रहता है। चार-पाच वष पूव गुजरात सरकार ने एक तीसर पारितोषिक का आधा हिस्सा फँका था जिसका मंत्र अस्वीकार किया था। चार यूनिवर्सिटीयो मे मेरी पुस्तकें एम० ए० पाठ्यक्रम मे चलती ह। दम्बई यूनिवर्सिटी के बी० ए० (स्पेशल) के गुजराती के प्रश्न पत्र म 20 अका का एक प्रश्न पूछा जाना है चंद्रवात बंधी का गुजराती क्या माहित्य मे क्या योगदान है ? आज मरे सामने पाच कम चन रहे है। मेरी 11 वर्षीय पुत्री रोवा आज तक अलग अलग राज्या क स्कूलो म चार भापाए पढ चुकी है, लेकिन गुजराती नहीं जानती। अंग्रेजी मे भगडन वाली 'ग्रामिण गल' पत्नी का गुजराती प्यार आज पराकाष्ठा पर है। भौतिक सुख क साधन—घर पैसे, जेवर शेयर, जमीन—कुछ भी नहीं उधार जीवन म आज जितना सुखी कुटुम्ब-जीवन है, उतना कभी नहीं था। मिथ्या मेरे लिए समस्या कभी नहीं रही (एक स्त्री न 'प्रगनेट' होन का भी अभियोग लगाया था), लेकिन मैं गर्दिश से गुजरा हुआ गुजरात हुआ, कवाकार हू। आज प्रति वष कालेज के प्रथम वष मे पाच तो नई लडकिया प्रवेश पाती हैं। माचता हू चार ही वष म घ बच्चे ममार की भूलभुलैया मे लो जाएंगे—और जब अकेला होता हू, तब एक और विचार भी कौध जाता है। मेरी पहली बच्ची अगर जीवित रही होनी तो अभी तरह प्रथम वष के किसी क्लास रुम म स्वप्निल आखें चमकानी हुई बटी हानी

गर्दिश के कारण ही शायद कुछ विचित्रताए आ गई ह। मुझे वादासी-जाफगानी रगो से लगान है, टूफिन की लाल हरो लाब्टा के बीच वाली ऐंवर लाइट जैन, जो हमेशा हाशियार रहन की सूचना देती है। ह्लिस्नी धियर का रग, टूटी इटो का लडहरनुमा रग, पुरानी तस्वीरो का फीका मेपिया रग, मिकते हुए आट का रग, ताह के जग का रग जनन का रग, गध के पशाब का रग—दस प्रकार के रग विशप रूप से पसन्द ह। गर्दिश का ना वही रग हागा। पाइप क धुए की ओर दखन हुए सोचना हू कि पराजय के साथ जबरदस्त नाता रहा है। शायद ही

वभीकीई वाम पूरा सीधा पार उनरा है, घुटन छिन जान के बाद ही बरम
 आग रख पाया ह । पराजय ने मुझे एक अजीबो गरीब सर्गिनी बरणी
 है—पाच ही मिनटा म मैं गा मयता ह । जीवन के लिए मुझे गुनराती
 शब्द 'गम्मत' व्यवहार करन की इच्छा होती है । 'गम' धातु स गम्मत
 बना ह, अथ होता ह तरफ की गति, मन या भुक्ताय, वह जाना
 आदि, नेकिन व्यवहार की भाषा म गम्मत का अर्थ हाता है बिना ।
 रौर, गम्मत चल रही है । दशर को मेरे दुग म 'वैस्टेड इटरेस्ट' ह नी,
 बरना गिफ विघाता की गक्ति नहीं थी मर भाग्य म इतन अराजन नव
 लिसन की । एक दिन यह गम्मत रन जाएगी । उस दिन सबर गेव
 की होगी, बूट पालिंग से चमकत हागे, बादल होगे कुछ आनाग मे,
 छुट्टी ना दिा होगा और बच्चे नाचे फल्लोन करते हागे—उनी राज
 यार दोस्त मेरे शरीर स चरमा उतारे बिना म्गान जाएगे, तब म्गान
 करता हू कि एन नम्बर दमगान पर मुझे अग्निदाह मिलेगा

आज साहित्यकार के नाते जिन गर्दिशा से मैं गुजर रहा हू, लगता
 है कि अब टूटने म बहुत देर नहीं हैं । रम यी है सोल्वेनिरिसन नी यही
 है । गुजराती साहित्य से निराग हा गया ह । मेर साहित्य जीवन के सबसे
 बडे पारितोषिक मिलने का मौका बहुत पास आ गया है—शायद दो यष
 की जेल । शायद मुक्ति । शायद लिखा म बिल्कुल बद कर दूगा और
 अपन कुटुम्ब और मित्रो के साथ बैठकर बातें करूंगा—मत्पजित राय
 की, आचाय रजनीश की महगाई की रट 84 की बस की अथवा गन्शि
 के दिनों की । बयो लिखा यह सब ? किसके लिए ? प्रथम विश्वयुद्ध मे
 मयु के पूव जवान अग्रेज कवि रॉबट ऑवन न लिखा था जो लोग
 कल्पना नहीं कर सकत वे सही मायन म सुखी होन चाहिए । भौतिक
 सुख बहुत आसान था पाना । मगर आसान चीजें ही डूर रह गई हैं ।
 आसानी से सिवा गर्दिशो के कुछ नहीं मिला । नक्शे मे तिब्बत की पठ
 भूमि पर पवतो का फँलाव उभरता देखता हू और कल्पना करता हू
 शायद यही मेरी ज मकुडली का चित्र है ।

भीष्म साहनी

लगता है जि दगी का बहुत पा वन प्रद्वेतेन प्रम्या म नीता रहा हू। ऐसा नहीं लगता कि सचेत रूप म, आसपाम की हर बात को समझत नूभन हुए धावें खोलवर और वाता को लील परल वर निणय लिए हा, बरदम उठाए हा। मुडवर दलता हू तो यट भी लगता है कि हर वार सकट की स्थिति म मन पर जडता सी छा जाती रही है — नल ही वह बहन की मत्यु रही हो या हिडू मुस्तिम दग रहे हा, या कोई और सकट। हर चोट का दद मीने बहुत बाद म ही मटसूस किया है उसका अय और महत्त्व भी बहुत बाद मे ही समझ पाया हू। यह भी देखता हू कि जि दगी म कई बार हल्क स भटक मन पर गहरा प्रसर छोड गए है जबकि वडी बडी मुमीवतें कही कोई सरोच तक ही छोड पाई हैं। या शायद मुझे ऐस, लगता है, अनीत क गुक्तो मे स किसी सूत्र को पकड पाऊ जिसकी मदद स अपने को साफ साफ दल पाऊ, बडा कठिन काम है।

वचपन का माहौल अघेरी गुफा जसा लगता है। मैं अकसर बीमार रहता था, और उम खेल कूद से वचित था, जो वचपन का अधिकार है। छोट पर पडा सरकनी धूप को देखता रहता, गली म गुजरत फकीरो, भिलमगो, खोमचे वालो की आवाजें सुनता रहता, सिरहान के नीचे रखी रेजगारी की डेरिया बनाता रहता था। मा की गद म तिर रखवर अपार मुल मिलता था। शाम क भुटपुटे म मा के मुह स सुन कवित्त, गीत, कहा-निया, जिनम अकसर गहरा अवसाद भरा रहता था मेरे रोग के साथी थे। स्वस्थ हसते खेलत लडना को ईष्या की नजर से देखता था। तभी स ही शायद अय वालका की तुलना म अपने को छोटा और असमय समझने लगा था। और लोग स्वस्थ थे मैं बीमार था, और लोगो के चेहरे चमकते थे, मेरे चहरे पर पीलिमा पुती रहती थी, और लोग तरह-

तरह के शरतक कर सवत थे, मैं उह केवल चक्किन आखा से देग भर सक्ता था। गोरे चिट्टे दमकत चेहरो वाले, स्वस्थ तथा व्यवहार-शुगल व्यक्ति मुझे हीरो जर्म लगते थे, जो धात्मविश्वास के साथ हर काम मुभीने त कर जात हैं।

पर मेरी नि महायता मारा वक्न मेरे दिल को मयती रहती। अदर ही अदर मरा धय चुक्ने गगता। इसलिए जब विस्तर पर न उठता तो भाग खडा होता। घर म से निक्लते ही किसी ताग के पीछे भागता और बूदार पायदान पर चट जाता। फिर तागा सडके लाघता हुमा जाता और मैं एक सडक स दूमरी सडक, एक बाजार स दूमरे बाजार, पागला की तरह आसपास के नजारे देखता हुमा जान कहा स कहा जा पहुचता था। उस दिन घर लोटता तो या तो फिर विस्तर पर पड जाना या बुरी डाट खाता और मेर घूमने फिरन पर बदिश लग जाती।

इमके अतिरिक्त घर का माहौल एक पास तौर का माहौल था इमके ब्रह्मचारी की पीली घोती थी, चुटिया मार यन्त्रोपवीत थे, हवन सध्या और उपदेश थे और आयसमाज का साप्ताहिक सत्सग था। यहा मास खाना निषिद्ध था, स्त्री की ओर आख उठाकर दरना निषिद्ध था उपवास पढना, फिल्म दराना निषिद्ध था।

स्कूल छोडन पर एक ऐसे व्यक्ति स साक्षात्कार हुमा जिसने मेरी दुनिया बदल दी। वह भी गोरा चिट्टा स्वस्थ, सौम्य मुदर व्यक्ति था। कॉलेज के पहले र्पों म वह मेरा अंग्रेजी का अध्यापक था। इस आदमी न मुझे उम दकियानुसी, सकीण, घुटन भरे वातावरण म से खीचकर बाहर निकाल लिया। या तो घर म मेरे बडे भाई का सधय भी उसी ओर उमुख रहा था, पर यह आदमी उन्न म बटा था, और उसका व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली था। उमे साहित्य से गहरा प्रेम था, और उसका अपना व्यक्तित्व बहुत ही निखरा निखरा और आकषक था।

जब वह पढाये आता तो हम छात्र उसके 'डेस्क पर गुलाब के फूल चुनकर रख देते। कविता के मम समझाने मे इसे विशेष रुचि थी। तभी शैली और कीटस पढने को मिले ड्यूमा और विक्रम ह्य गो के उपवास तभी फिल्म देखने लगा, रगमच पर नाटक देखने लगा सिर पर बाल

रखने और पतलून पहनने लगा। अब सीचता हू तो वह उम पीट्टी का उदारवादी व्यक्ति लगता था जो अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित होकर मध्ययुगीन सत्कारा समय निवृत्तर अपने छात्रों को भी निकायना चाहता था। उन दिना उसका एक एक शब्द मेरे लिए वेदवाच्य था। उसीक प्रभावनाधीन मैं साहित्य रचना मे कलम आजमाई करन लगा था।

पर यह व्यक्ति विद्रोही स्वभाव का नहीं था। इसका अदृष्ट विश्वास हर वान म बीच का रास्ता अपनाने म था, गामद इसी कारण वह छात्रों के मा वान के बीच भी उभा ही तोरप्रिय था, जितना छात्रों में, 'तो कि वास्तव म एक वृत्त वटा विरोधाभास होता है।

उही दिना एक और तूफान उठ रहा था और उसके दबाव क नीचे हमारे छोटे से शहर की दीवारें हिलन लगी थी। छात्रादी का आन्दोलन जोर पकड रहा था, और छात्र छोट छोट, बागज क बन, 'यूनियन जैक' चूना की नोक पर लगाए धूमन लग थ। भगत सिंह की फासी पर चडाया जा चका था और टटका के दिलो मे बलबले उठन लग थ। मेरे गंधापन की सहानुभूति दशननतो के साथ थी। लेकिन आन्दोलन मे कूद जान फा उभा स्वभाव नहीं था। चुनाच उसकी देसा-देखी उसके छात्र भी इस आन्दोलन के दगक ही बन रह।

इन बीच बीच ए० और एम० ए० की पडाई करन मैं लाहौर चना गया। वहा कालेज म चारो और अग्रजियन का बोलबाग था। सभी लडक कालेज छोडकर बडे बडे सरकारी गफसर बनन क मपन देखत थ। यादर हाने वाने आन्दोलन की आवाज तक वहा नहीं पहुच पानी थी।

बादशाह मलामत जाय पचम, नये साल की रात को साम्राज्य के नाम नव वष का सदन रेडियो पर दते थे। मैं और गवनमेट कॉन्ज के मेरे साथी मुबह तीन वने रेडियो के सिरहान बँठे उनका भाषण सुनत। जब एडवड ने श्रीमती सिम्पन स विवाह करने का प्रस्ताव रखा और उह राज-स्वाग करना पजा, तो मैं और मेरे साथी बेहद उत्तेजित घमते थे, पडाई मे मन ही नहीं लगता था, चारा आर इस आदश प्रम की ही चर्चा चलनी रहती। मैं एक दूसरे प्रकार के लयरे मे जा पहुचा था, जो दग के जीवन से कटा हुआ था।

अपने गहर लौटन पर माहील बहुत कुछ बदला हुआ पाया। दूसरे विश्वयुद्ध के बादल घिरने लगे थे, और देश में राजनीतिक हलचल तब होती जा रही थी। मैं अभी अपने अध्यापक के चरणचिह्न पर चल रहा था, हालांकि परिस्थितियाँ मुझपर तरह-तरह के दबाव डालने लगी थी। देश के बदलते माहौल से भी मैं अछूता नहीं रह गया था। एक अवसर याद आता है, मैं और मेरा अध्यापक कटोनमेट में एक दिन सर कर रहे थे। दर तक घमंत रहने के बाद एक रेस्तरा में चाय पीन बठ गए। रेस्तरा गोरे फौजियो से सजासज भरा था। रेस्तरा का मालिक कोई चीनी व्यक्ति था, जिसे पसीना पोछन की फुसत नहीं थी। लगभग आधे घंटे तक हम चाय का इंतजार करते रहे हमें चाय नहीं मिली, जबकि बाद में आने वाले अनेक गोरे फौजियो को 'सब' किया जा चुका था। यह स्पष्टतः जातिभेद था। हम ही दो हिन्दुस्तानी रेस्तरा में बैठे थे। एक बार जब चीनी मालिक पास से गुजरा तो मैंने उससे चाय लाने का आग्रह किया तो उसने बड़ी रुलाई से 'नो टी, नो टी।' कहा और बड़बडाता हुआ दूसरी ओर चला गया। मुझे आग लग गई। अपने ही शहर में हमारे साथ यह सुलूक हो मुझे यह असह्य लगा। मैं उठकर चीनी मालिक के पास जाने ही वाला था कि मेरे अध्यापक ने मुझे रोक दिया और मुझे पकडकर बाहर ले गया।

—यह उसका रेस्तरा है, हमारा नहीं है, उसका अधिकार है कि जिस 'सब' करे और किसने करे।

मैं अपने अध्यापक के चेहरे की ओर देखता रह गया। उससे मुझे इस तक की आशा नहीं थी। फिर वह कहन लगा—मैं छोटी सी बात पर बखेडा सटा करना ठीक नहीं समझता।

मैं चुपचाप उसके साथ वहा से चला आया। वे दिन ऐसे थे कि अगले शहरों में लोग जान पर खेल रहे थे, मेरी भी स्वभावगत भीरुता टूटन लगी थी। मैं चुपचाप उसके साथ साथ घर लौट आया पर पहली बार मुझे उनकी उदारवादी बर्तन प्रखरन लगी।

इसके बाद हमारे बीच वहाँ होने लगी दो एक बार झड़पें भी हुई। एक दूसरे के नजदीक रहते हुए भी हम एक-दूसरे से दूर होने लगे। यह

पीढ़िया व अंतर की ही स्थिति थी। पर नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से अलग होत हुए भी उसकी श्रणी होती है। उम व्यक्ति न मेरी जिंदगी मे वभी एक लिडकी खोली थी जिसम से भरपूर रोशनी अंदर आई थी। वह शरत् अनजान म ही मुझे कुछ दे गया था।

लकिन वाम्त्व म वह मुझे क्या द गया था " मनुष्य का सवेदन अपने परिवश म से कौन से सस्कार आत्मसात करता है कौन सी बातें उसे अछना छोड देती हैं कहना अत्यत कठिन है। सस्कारा की दुनिया इतनी पचीदा, इतनी दुर्वोष होती है। सब कुछ कहत हुए भी मैं अपने को कही नहीं पाता। मेरे अध्यापन ने मुझे क्या दिया ? साहित्य प्रम ? उदारवादी मनोवृत्ति ? किनार किनारे चलन की प्रवृत्ति ? कहा स क्या मिला, इसका विश्लेषण निरर्थक प्रयास है।

कालज म अध्यापन के साथ साथ मैं व्यापार करने लगा था। यह व्यापार मुख्यत वपड का था। मेरे पिताजी व पास विभिन्न कारखाना की एजेंसिया थी हम वपड के व्यापारिया स आडर लेकर कारखानदारा को भेजत और माल आ जाने पर हम कमीशन मिलता था। सीधा सा काम था। मुझने पहले मेरे भाई दो तीन बरस तक यह व्यापार कर चुके थे और जब मैंन इसम हाथ डाला तो भाइ शातिनिकेतन म पहुंच चुके थ। पर व्यापार का अनुभव बडा अनूठा और विकट साबित हुआ।

११०० ए० पास करन के बाद एजेंसी के काम की दुश्वारिया वही जानता है जिसन यह काम करके देखा है। मैं ऐस कॉलेज स पढकर लौटा था जहा अंग्रेजियत का माहौल था, अधिकांश लटक सरकारी अफसर वनन के सपन देखत थे। व्यापार के व्यवसाय के लिए इस प्रकार की शिक्षा बहुत बडी रकावट थी। मुझ यह विचार सताता तो नहीं था लकिन मेरे अवचेतन म था जहर। मैंन बट उत्साह के साथ काम शुरू किया लकिन दिमाग पर साहित्य के अतिरिक्त गांधीवादी विचारा का भी रंग चला हुआ था। मैं नमूना का बक्सा उठाए किसी दुकान के चबूतर पर जा पहुंचता। दुकानदार यदि ग्राहको व साथ व्यस्त होता तो ब्राह उठाकर दखता भी नहीं व्यस्त नहीं होता तो हुआ सलाम हो जाती। कभी-

कभी सोडावाटर की बोटल भी पिला देता, लेकिन इसके बाद मेर अस्तित्व को भूल जाता। कभी अपनी बहिया वाचता, कभी दोपहर का बकन होता तो मेरे बड़े बड़े लम्बी तानकर सो जाता। दो तीन घण्टे बाद वह बड़े अनमने ढग से मुझे बक्सा खोलन को कहता। कभी ऑर्डर मिलता, कभी नहीं। सारे बाजार का यही आलम था। मैं दिन बीतत बीतत बिन और क्षुब्ध हो उठता।

सबसे तल्ल तजुबा लाहौर म हुआ, और मैं वहा से परेशान हाकर लौटा। अब सोचता हू तो लाहौर मे नमूनो का बक्सा उठाकर ले जाना ही भूल थी। लाहौर मे मेरे लडकपन के दिन बीत थे। जिस माल रोड पर मैं दोस्तो के साथ कभी शली और कीटम पर बहस करता घूमता था, डामा और डिबेटा मे भाग लेने जाया करता था, उसी माल रोड पर मैं मजदूर के सिर पर नमूनो का बक्सा उठवाए दुकान दुकान ऑर्डर लन जा रहा था। बहुत बडा परियतन था। यो तो हमारा सामाजिक वातावरण अभी तक नहीं बदला, एक तरह से हम अभी भी अरनिवशिक भारत म जी रहे हैं जिसमे सरकारी नौकरी की इज्जत है बाकी सब काम निचले स्तर पर हैं, अपने काम मे किसीको गव नहीं सभी एक दूसरे स बगलें भाकते घूमते हैं पर अग्रेजी साहित्य मे एम० ए० करने के बाद एजेंसी का काम करना सचमुच बडा कठिन था। आखिर एक जगह पर मरी सहनशीलता चुक गई।

माल रोड पर सिबियो की एक बहुत बडी दुकान थी। मैंने पत्र द्वारा उनके साथ समय निश्चित किया था और ऐन दस बजे नमून लेकर पहुंच गया। मैंने दुकान का ठाठ बाट देखा तो अग्रेजी म बात चलाई। सठ ने कहा कि बक्सा रख दो हम बारह बजे नमून देखेंग। मेरे लिए इस तरह का उत्तर नया नहीं था। मैं बक्सा रचा और सडकें नापन बाहर निकल गया। बारह बजे लौटा तो दुकान का मालिक मौजूद न था। मैं इसरार किया तो एक कारिदे ने समभाया कि नमूने तो हम भी देख सकते है लेकिन ऑर्डर तो येठ जी ही देंगे, तुम चार बजे आ जाओ। मैं फिर मन मारकर दुकान मे से बाहर निकल आया। और बजाए सडकें नापन के मैंने काँफी हाउस की राह ली, उसी काँफी हाउस की जहा यारो के साथ

घण्टो बैठा बतियाया करता था। वहाँ जाना बहुत बड़ी मूल थी। काफी हाउस में घुसत ही मैं अपने को अजनबी महसूस करने लगा। वहाँ पर पहले जसी ही चहल पहल थी, दो एक पुराने दोस्त भी मिले, पर मरना ऐसा बुभा कि मुह से बात नहीं निकली। सद्सा सब कुछ ही मर लिए पराया हो गया था। मेरा गला रुध रुध गया। इसपर जब चार बजे दुकान पर लौटा तो सठ विगडकर बोला—देख लेंगे देख लेंगे, तुम तो पीछे ही पड गए हो। मैं भभन उठा। जो मन में आया कहा और सब अंग्रेजी में कहा पर मरी वोललाहट का सठ पर इतना ही असर हुआ कि उसने मेरा बक्सा उठवाकर दुकान के बाहर रखवा दिया। मैंने तैंग में नीचे उतरकर एक तागा बुलाया और उसी तरह अंग्रेजी बोलता नाग उगलता तागे पर बक्सा रखकर वहाँ से चलने लगा। एक बार मुडकर देखा तो सठ और उसके कारिद चबूतर पर खडे हस रहे थे।

—'कमीशन एजेंट भी तेवर दिखाने लगे हैं। पर जल्दी ही मीधा हो जाएगा, अभी अभी पकडकर निकला है

उसी रात की गाडी पकडकर मैं लाहौर से चला आया।

मैं ब्यापार के लिए नाबारा साबित हो रहा था। दिन प्रतिदिन वह मेरी छाती का बोझ बनता जा रहा था। एम० ए० की तारीख ही नहीं, सग्ट तरह के मानसिक गुक्ल मेरे रास्त के रोडे बन रहे थे। उनमें से एक मेरा आदसवाद भी था। न जान वहाँ से यह विचार मेरे मन में समा गया था कि मैं 'कमीशन एजेंट' हूँ और मुझे कमीशन से ही सतुण्ट रहना चाहिए। न जान गाधीवादी विचारधारा का असर था या क्या था मुनाफा कमाना, स्वयं माल खरीदकर मुनाफे पर बचना, मुझे मजूर न था।

जहाँ और दुकानदार मेरे द्वारा माल खरीदकर मुनाफे पर बचना, वहाँ मैं स्वयं केवल आडर ही बुक करता फिरता था। यो तो मेरे पिताजी भी कमीशन पर ही काम करते रहे थे मगर वह जमाना दूरमा था।

दूसरा विश्वयुद्ध डिडन की दर थी कि बाजार तज्ज हीन लगा। आराम पाच भ्रान गज पर आडर बुक करता तो आडर की मजूरी आत आत दाम बनकर छह भ्रान हो जाता। एक एक गाठ पर लोग सक्डो बगा रहे थे। मुझे ब्यापारी तक कहत कि जहाँ पचास गाठें दुकानदारा के लिए

बुक करत हो, वहा दस गाठें अपने लिए भी बुक कर लिया करो। पर मैं ईमानदार बना घूमता था। साधन और साध्य का तालमेल बँठा रहा था। खैर उही दिनों एक और घटना घटी। जग छिड़ जाने पर सरकार न गम बपड़े पर भी कंट्रोल कर लिया और हर शहर म दो-दो, तीन तीन अधिकृत विक्रेता मुकरर कर दिए। हम भी दिल्ली से चिटठी आई कि 'आवर टेक्सटाइल कंट्रोलर' मे मिलो। मैं उसी रात गाडी मे बठा और दिल्ली जा पहुँचा। 'कंट्रोलर' की कुर्सी पर एक बगाली सज्जन बँठे थे। बडे आदर से मिले। उन्होंने बताया कि हम तुम्हारे शहर म तीन विक्रेता नियुक्त करेंगे और उांमे से तुम एक होगे। कल सुनह आ जाओ और करारनामे आदि पर दस्तखत कर जाओ। मेरी बाछें खिन गइ। उसी शाम एक सज्जन मुझमे मिलने मेरे होटल पर पघारे। वह मेरी जान पहचान के निकल, दूर पार के रिश्तदार भी थे। मैं हैरान था कि उहे मेरा पता कैसे मालूम हुआ और मुझसे मिलो क्याकर चल आए। बँठत ही कहने लगे—बगाली बाबू दस हजार मागता है। यह रकम बहुत नहीं है। तुम घर पर तार देवर इसका इतजाम कर दो।

मैं भौचक्का सा उनके चेहर की ओर देखन लगा। यह काम तो मैं हरगिज करन के लिए तैयार नहीं था। मुनाफे पर काम इतने दिन नहीं किया तो क्या अब रिश्त देने जाऊगा? और फिर मेरा नाम 'लिस्ट' पर है यह इनकार कर ही कैसे सकता है?

मन इनकार कर दिया। अब की बार वह भौचक्का सा मेरे चेहरे की ओर देखने लगे।

—तुम्हारा दिमाग ठिकाने है या नहीं? उन्होंने कहा। उसका हाथ गन नहीं करागे तो तुम्ह 'एजेंसी' मिल जाएगी? किस दुनिया म रहत हो? वह देर तक मुझे समझाते रह, पर मैं एक नहीं मानी।

दूसरे दिन मिलन गया तो बगाली अफसर न मिलन म इनकार कर दिया। लच के बाद फिर अदर नाम भेजा तो उसने अदर बुला लिया। पहन की ही भाति वह आदर से मिला और बोला कि आप निश्चित रहें नियुक्ति की चिटठी आपको अपने घर पर मिल जाएगी।

मैं चला आया, सतुष्ट पा कि काम हो गया। पर वह दिन गया और

यह दिन आया, बिटठी आज तक नहीं मिनी।
 पर इसका मुझे खेद हो रहा हो एसी बात नहीं थी। मैं किसी दूसरी
 दुनिया में जी रहा था। वास्तव में मैं दात पीत परिहार से था चलते
 व्यापार में दाखिल हुआ था पिनाजी मिर पर थ मैं आदनों से खेला
 सकता था। अगर गरीबी में जिदगी शुरू की होती तो जरूरत से बल
 नाल दती।

घर लौटकर मैं पिताजी को किन्मा सुनाया तो वे चुप हो गए।
 मुझे कहते भी क्या कि रिश्तत देकर क्या गही आए ? पर उनका मौन
 ही मानो कह रहा था बड़ा बटा पहल ही व्यापार छोटकर शान्तिनिकतन
 जा बठा है अब द्वारा अमल का एमा धनी निकला है नि मिना हुआ
 नाम फेंक आया है। मुझे विश्वास है उस दिन पिताजी न भी व्यापारियो
 की सूची में न मेरा नाम वम ही काट दिया हागा जन बगाली बाबू न
 काट दिया था।

पिताजी का खैया मेर प्रति कुछ कुछ बदलन लगा। इनसे पहल
 जब भी मुझे कोई उपयास पढत था कुछ लिखत पन्ते देखत तो हल्की भी
 किडनी के साथ उठा दत—नाओ बग घमो फिरो किताब लकर बठ
 गण हो। तुमन बहुत किताबें पठ ली है। पर अब उहान कहना छोड
 दिया। दिन भर बाजार में भ्रू मारन के बाट घर लौटत ही मैं कोई
 किताब लेकर बठ जाता था। इससे मुझे गहरी तमकीन मिलती। मुझ
 लगता था कि जिस दुनिया से धकेलकर बाहर निकाल दिया गया था
 उनमें अब भी लौट सकता हू। किताबों के लिए एक उत्तजिन-मी भूख
 मरे अन्तर पैदा होने लगी थी। यह साहित्य में एम० ए० पास करके
 व्यापार करन का नतीजा था।

उ ही दिना एक और भावना पेशान करने लगी थी। 1942 का
 आंदोलन शुरू हो चुका था और असवारों की खत्रों बेहद उत्तजित करन
 वाली थी। बम्बई में प्रस्ताव पाम होन के बाद जब नताआ को गिरफ्तार
 कर लिया गया तो सार दग में जमे भूचान आ गया था। मेर दिन में
 कायेन के नताआ के प्रति अगाध श्रद्धा थी। नहरू जी अब भी कभी शहर

मे आते, मैं एक बार नहीं, तीन तीन बार, भीला भागकर उन्हें दखन जाता। गाधीजी को मेवाग्राम में बहुत निबट से देख चुका था। उनमें दा ब्रातों भी घर चुका था। मेरे बस लासा-लाय गुजवा के दिल इस आशयनन व साथ घण्टत थे। आदोलन शुरू होन की देर थी कि हमार गहर में भी पकड घण्टत दुरु हो गई। मेरे लिए चुपचाप घर पर बैठना असम्भव हो रहा था। मैं और तो कुछ नहीं कर पाया—मैं खादी पहनना शुरू कर दिया। खादी का कुर्ता पाजामा पहन मैं सड़का पर घूमता, अदर ही अदर इस उम्मीद से कि पुलिस वाले उसीको मेरा विद्रोह मानकर मुझ गिरफ्तार कर लेंगे। मुझे किसीन नहीं पकटा और मेरा आदोलन खादी का वाना पहना तक ही सीमित रहा। मुझे इसी बात से योग बहुत सताप मिलने लगा था कि व्यवहार के स्तर पर नहीं तो भावना के स्तर पर तो वही जल्द उन लोगों के साथ जुड गया हू, जो देश की आजादी के लिए अपनी जान पर खेल रहे हैं।

और जब मतला साफ हुआ, जग खत्म हुई कांग्रेस के दफ्तर फिर से खुलने लगे, तो मैं सीधे कांग्रेस में अपना नाम निम्ना आया और सक्रिय रूप से कांग्रेस का काम करने लगा।

दो दिन बीतने लगे। उन दिनों मैं एक ही समय में तीन तीन काम कर रहा था। कॉलेज में 'ग्रॉनरेरी तीर पर पढाता और ड्रामे खेता बाजार में व्यापार करता और साथ में कांग्रेस का काम।

माकमवादी विचारधारा की ओर रुझान भी उही दिनों हुआ। दूसरे विश्वयुद्ध के दिनों में रजनी पाम दत्त की एक पुस्तक 'राइट ऑफ नेशनल सोशलिज्म इन यूरोप' मेरे हाथ लगी, जिसमें यूरोप में उठने वाली फासिस्ट ताकत का गहरा विवेचन था। यह दृष्टि मेरे लिए त्रिकुल नई थी। युद्ध की विभीषिका पाम दत्त के विश्लेषण को पग पग पर सही साबित कर रही थी। इसके बाद अनक अन्य पुस्तकें पढ़ने की मिली। मेरे एक सह अध्यापक और मित्र कम्युनिस्ट कार्यकर्ता थे। उस आदमी के अथक निस्वाय परिश्रम सुनभी हुई दृष्टि और गहरी निष्ठा न भी बड़ा प्रभावित किया। सांप्रदायिक दंगों के दिनों में वह और उसक मिने चुने साथी जान जोखिम में डालकर दंगों को रोकते रहे थे।

गुरजी के दिन घाण । दस के बटवार म पहल हमारे शहर और
 मानस के गांधी म नारी समाद हुए । फिर म दिन और दिमाग पर
 जन्म छा गई और म पठपुननी की तरह इधर म उधर घमन लगा ।
 दादा बुर म ही, पर ज्ञान विपरीत बात यह थी कि उनपर किसीका
 बात न था । गुरजी के पीरन ही बा जव लोग गांधी म भाग भाग
 कर गुर में मान लताता में रिलीफ समटी के छावड इवटडे बरन का
 काम कर रहा था । पता पर बिना म बिना घर जन कितना माली
 नुरान हुआ । गांधी गांधी म घाण गांधी की भाग बीती मुनता और रजिस्टर
 का करना जाता । मरी निम्न धना पर किसी बात का असर नहीं हो
 रहा था । इसी भा विधि म मी एक दिन उग हुए के बिना भी लडा
 था, जिम एक गांधी मिया मया छोड छाट बच्चा का फेंक बूड
 मरी थी । मागे फूनवर जतह तक था गई थी और हुए की जगन के
 भाषण पर उनक पति और सम्बन्धी जट पहचानन की कागिद कर
 रहे थे

जब जम मन गट हो जाता है, तो अन्तर ही अन्तर कुछ टूटता है
 बाई धारणा कोई विधान, न जान क्या । उनकी छायाड नहीं जाती दद
 भी महसूस नहीं होता । तबिन कुछ टूटता उम्पर है ।

घटनाओं, परिस्थितिया का ब्योरा बड़े तबसगत ढंग सपेस किया
 जाता है जयदि अवचेतन की दुनिया के साथ इनका दर पार का ही
 सम्बन्ध होता है । अमल नाम तो बहा खेने जात हैं । बर कोई घटना अव-
 चतन म अचना डक ठो मर्क, कोई याद उमकी गहरी परता मे अटन
 मर्क, बर अनाता म हा जाता है । उह पवटन की कोगिा भी करो तो
 अधू वित्री के धा ही हाथ गगत हैं स्टज पर रोशनी क वक्त म
 नाचती हुई ननकी, जा महमा बिगड उठी है, ब्याकि किसी दशक न
 स्टज पर एक पसा फेंक दिया है घर के बाहर भीड है, लोग ने समे
 के गांधी किसी आत्मी को बाध रया है और बाधने वाली रमनी की
 यहां तक बसत जा रह है कि उस आदमी की माखें निकल आई ह ।
 कागम के जनसे मे मच पर गडा एक दुबला पतला आदमी हाथ उठाए

चिल्ला रहा है, दगो, मैंने नमक का बानून तोड़ा है, मेरे हाथ में नमक की पुडिया है, इसे मैं स्वयं बनाया है, और एक आरस पुलित्त के मिपाही और अफमर आकर उसे घेर लेते हैं और उस पुलित्त-माटी में घबेल देते हैं। वट अभी भी चिल्लाए जा रहा है 'भारत माता की जय ! महात्मा गांधी की जय !'

तरह-तरह की यादें, अनगिनत अधूरे चित्र। इन्हीं अधूरे चित्रों से स्फुरा, अनुभवों की पूरी लेकर मैं साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ था। गांधी सभी ऐंग्ल लोग जो परिस्थितियों द्वारा धकेले जाते हैं जो व्यवहार की दुनिया में निरन्तर साबित होते हैं, अपने घरमान पूरे करने के लिए साहित्य का दरवाजा खटखटाने हैं।

घर में साहित्यिक वातावरण पहले से था। पिताजी शेख सादी के प्रेमी थे। मा के पास कहानियाँ, गीता, 'तोक्यो कितया का खदाना था। इसके अतिरिक्त बड़े भाई कॉलेज के दिनों से अंग्रेजी में और कॉलेज के बाद हिन्दी में बारायदा लिखने लगे थे। व्यापार के सिलसिले में कानपुर जाते समय मैं अक्सर दिल्ली में रुका करता था। मेरी बुझा की बटी, श्रीमती सत्यवती मलिक का घर साहित्यिक केंद्र सा बना हुआ था। यही पर उन्हीं दिनों अनेक रचनाएँ पढ़ने की मिली। जैनद्र जी के 'उपयाम त्यागपत्र' की उन दिनों धूम थी। तभी 'अज्ञेय की कुछेक कहानियाँ, विशेषकर कोठरी की बात पढ़ गया। दाना रचनाओं में छिपा गहरा दद देर तक उद्वलित करता रहा। उन्हीं दिनों सफर में ही पहली बार गोदान पढ़ने की मिली। 'गोदान' समूचे दश की कहानी थी उसमें देश के दिल की घडकन थी। उसे पढ़ना एक विलक्षण अनुभव था। उसे पढ़ चुकने के बाद हर अघेड किसान मुझे होरी नजर आता था, जिसकी समस्याओं को मैं जानता था जिसके दद को महसूस कर चुका था। प्रेमचंद की दृष्टि में एक विशालता थी जिसने वेहद प्रभावित किया। उन्हीं दिनों यशपाल के दो कहानी संग्रह 'पिजरे की उडान' और 'नानदान' को भी बड़े आग्रह से पढ़ गया।

इस तरह धीरे धीरे मैं इस क्षेत्र की ओर खिंचता चला गया। उन दिनों 'विशाल भारत' और 'हस' हिन्दी के प्रमुख पत्र माने जाते थे।

उनमें अपने लेख आदि भेजते गये। फिर भी साहित्यिक काम छिट पुट ही रहा है। यद्यपि वे बाद जब अपना गहर छोड़कर दिल्ली का अपना घर बनाया तो अधिका नियमित रूप से लिखन लगा।

साहित्यिक क्षमता भी मधुसूदन वैश्याजी सपाट और सीधे-सादे ही रह जाँने जीवन में। वे समझना हूँ अपना सफल साहित्य नाम की कोई गोड भी नहीं होनी। जहाँ मैं हूँ, वही ही मैं रचनाएँ भी रच पाऊँगा। मेरे सकार, मधुसूदन, मेरा व्यक्तित्व मेरी दृष्टि सभी मिलकर रचना की मूर्ति बरतते हैं। इनमें एक भी भट्टी हो तो मेरी रचना झूठी पड़ जाती है। यह बहुत ही मेरे लिए निराधार ही है कि साहित्यिक रचना विचारों की यात्रा होती है या नहीं। प्रत्येक रचना, मेरी समझ में, एक इकाई होती है, सन्नित्य और अटूट, जिसमें कुछ भी अलग नहीं किया जा सकता। न विचार, न शिल्प, न शब्द सभी के सामंजस्य न ही उसका अस्तित्व बनता है। इनमें न कोई माध्य होता है न माधक। पर यह इकाई मूलतः जीवन की कारण से निकलकर आती है, भले ही लक्षण के सवर्ण के समान गंधाएँ इसलिए जीवन की ही बान बटनी है। जो रचना मात्र लेखक के अस्तित्व की उपज हो, वह अक्सर अधमगी रचना होती है, नये ही लेखक शिल्प और गंधा का लम्बा चौड़ा ताना बाना बुन रहा है। लेखक का अपना सत्य जीवन के सत्य से निराला नहीं होता। न ही जीवन का सत्य धार लेखक का सत्य दो अलग अलग सत्य होते हैं। एक ही सत्य होता है और यह जीवन का सत्य होता है। उसीको साहित्य ब्यापि दता है।

हरिशंकर परसाई

लिखने बठ गया हू पर नहीं जानता सपादक की मशा क्या है और पाठक क्या चाहते हैं। क्या आखिर वे उन दिना में भावना चाहते हैं, जो लेखन के अपने हैं और तिनपर शायद वह परदा डाल चुका है। अपने गदिग के दिनों को, जो मेरे नामधारी एक आदमी के थे, मैं किस हैमियत में फिर जीऊँ ?—उस आदमी की हैमियत से या लेखक की हैमियत से ? लेखक की हैमियत से गदिश को फिर जी लेने और अभिव्यक्त कर देने में मनुष्य और लेखक, दोनों की मुक्ति है। इसमें मैं कोई भोक्ता और 'सजक' की निःसंगता की बात नहीं दुहरा रहा हूँ। पर गदिश को फिर याद करने, उस जीने में दाहण कष्ट है। समय के सींगों को मैंने मोटा दिया था। अब फिर उन सींगों को सीधा करके कहूँ—आ बेल, मुझे मार।

गदिग कभी थी अब नहीं है, आगे नहीं होगी—यह गलत है। गदिग का सिलसिला बदस्तूर है। मैं निहायत बेचन मन का घोर सवेदनशील आदमी हूँ। मुझे चन कभी मिल ही नहीं सकता। इसलिए गदिश नियति है।

हा शर्त बहुत है। पाठक को शायद इसमें दिलचस्पी हो कि यह जो हरिशंकर परसाई नाम का आदमी है जो हसता है, जिसमें मस्ती है जो ऐसा तीखा है कटु है—इसकी अपनी जिदगी कसी रही है ? यह कब गिरा फिर कब उठा ? कैसे टूटा ? कैसे फिर से जुड़ा ? यह एक निहायत कटु निमन और घोबोपछाड आदमी है।

संयोग कि बचपन की सत्रसे तीखी याद 'प्लेग' की है। 1936 या 37 होगा। मैं शायद आठवों का छात्र था। कस्ब में प्लेग पडी थी। आवाडी घर छाड जाल में टपरे बनाकर रहने चलो गई थी। हम नहीं गए थे। मा सख्त बीमार थी। उह लेकर जंगल नहीं जाया जा सकता

था। भाय भाय करते पूरे आसपास में हमारे घर ही चहल पहल थी। काली रातें। इनमें हमारे घर जलने वाले कदील। मुझे इन कदीला से डर लगता था। कुत्त तक वस्ती छोड़ गए थे। रात के सनाटे में हमारी आवाजें हम ही डरावनी लगती थी। रात को मरणासन मा के सामने हम लोग आरती गाते—जय जगदीश हरे, भक्त जना के सक्क पल म दूर कर। गाते गात पिताजी तिसरने लगे, मा बिलखकर हम बच्चा को हृष्य न चिपग लेती और हम भी रात लगत। रोज का यह नियम था। फिर रात को पिताजी, चाचा और दो एक रिस्तेदार लाठी-बत्तलम लकर घर के चारो तरफ घूम घूमकर पहरा देते। ऐसे भयवारी, आस-दायक वातावरण में एक रात तीसरे पहर मा की मृत्यु हो गई। कोलाहल और विलाप गुरु ही गया। कुछ कुत्ते भी सिमटकर आ गए और योग दन लग। पाच भाई-बहनो में मा की मृत्यु का प्रथम ही समझता था—मनसे बड़ा था।

पिता की वे रातों में मेरे मन में गहरे उतरी हैं। जिसे आतक, निश्चय, निराशा और भय के बीच हम जी रहे थे, उसके सही प्रकन के लिए बहून पन चाहिए। यह भी कि पिता के सिवा हम कोई टूट नहीं थे। वह टूट गए थे। वह इसके बाद भी 56 साल जिए, लेकिन लगातार बीमार, होता-निष्क्रिय और अपन से ही डरत हुए। घघा ठप्प। जमा पूजी सान लग। मेरे मट्टिक पास होने की राह देखी जाने लगी। समझन लगा था कि पिताजी भी मर जाते ही हैं। बीमारी की हालत में उन्होंने एक बहन की शादी कर ही दी थी—बहुत मनहूस उत्सव था वह। मैं बराबर समझ रहा था कि मरा वोक्त कम किया जा रहा है। पर अभी दो छोटी बहनें और एक भाई थे।

मैं तयार होन लगा। खूब पढने वाला, खूब खेलन वाला और खूब मान घाना में गुरु स था। पढन और खेलन में मैं सब भूल जाता। मट्टिक हुमा जाल विभाग में नौकरी मिली। जगल में सरकारी टपरे में रहता। इटें राकर, उनपर पटिए जमाकर विस्तर लगता। नीचे जमीन चूहो न पानी कर दा थी। रात भर नीचे चूह घमाचौकडी करत रहत और मैं

सोता रहता। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो नींद टूट जाती पर मैं फिर सो जाता। छह महीने घमाचीकड़ी करते चूहों पर मैं सोया।

बेचारा परसाई ?

नहीं नहीं, मैं खूब मस्त था। दिन भर काम। शाम को जंगल में घुमाइ। फिर हाथ से बनाकर खाया गया, भरपेट भोजन—शुद्ध घी और दूध।

और चूहों ने बड़ा उपकार दिया। ऐसी भ्रातृत्व जानी कि भ्राम की जिन्दगी में भी तरह तरह के चूहे मेरे नीचे ऊधम करते रहे हैं, साथ तक मरते रहे हैं मगर मैं पट्टिए दिखाकर मजे में सोता रहा हूँ। चूहा नहीं नहीं, मनुष्यनुमा विच्छुओं और सापो ने भी मुझे बहुत काटा है—पर 'जहरमोहरा' मुझे 'गुरु' में ही मिल गया। इसलिए बेचारा परसाई का भौका ही नहीं आने दिया। उसी उम्र में दिखाऊ सहानुभूति से मुझे धरद नफरत है। अभी भी है। अभी भी दिखाऊ महानुभूति वाले को चाटा मार देने की इच्छा होती है। जन्म कर जाता है वरना कई 'गुमचि' तक पिट जाते।

फिर स्कूल मास्टरी। फिर टीचर्स ट्रेनिंग और नौकरी की तलाश उधर पिताजी मृत्यु के नजदीक। भाई पढाई रोककर उनकी सेवा में। वहाँ बड़ी बहन के साथ, हम शिक्षण की शिक्षा ले रहे हैं।

फिर नौकरी की तलाश। एक विद्या मुझ और आ गई थी—बिना टिकट भ्रमण करना। जबलपुर से इटारसी, टिमरनी, खडवा इंदौर, देवास बार बार चक्कर लगाने पड़ते। पैसों से नहीं। मैं बिना टिकट बेखटके गाड़ी में बैठ जाता। तरकीबें बचने की बहुत आ गई थी। पकड़ा जाता तो अच्छी अंग्रेजी से अपनी मुसीबत का बयान करता। अंग्रेजी के माध्यम से मुसीबत बाबुआ को प्रभावित कर देती और वे कहते—तटस हेल्व दि पूअर बाँव।

दूसरी विद्या सीखी—उधार मागने की। मैं बिल्कुल नि सकाच भाव से किसीसे भी उधार माग लेता। अभी भी इस विद्या में सिद्ध हूँ।

तीसरी चीज सीखी—बेफित्री। जो होना होगा, होगा। क्या होगा ? ठीक ही होगा। मेरी एक बुआ थी। गरीब, जिन्दगी गर्दिना

है। खिमक लना। मैं वैसे ही किया। बाहर खानसामा मेरा सामान लिए खड़ा था। मैं सामान लिया और चल दिया गहर की तरफ। बोझ मिन ही जाएगा, जो कुछ दिन पनाह दे दगा। अनिश्चय म जी लना मुझ तभी आ गया था।

पहले दिन जब बाबायदा 'मारसाम' रने तो बहुत अच्छा लगा। पहली तनन्वाह मिली ही थी कि पिताजी की मृत्यु की खबर आ गई। मा क वचने जबर देवकर पिता का श्राद्ध किया और अम्मापकी के भरोसे बड़ी जिम्मेदारियां लेकर जिन्दगी के सफर पर निकल पडे।

उस अवस्था की इन गदिया का जिन मैं आखिर क्यों इस विस्तार से कर गया? गदियों बाद मे भी आईं। अब भी घाती हैं, घाय भी आएगी पर उस उम्र की गदिया की अपनी अहमियत है। लेखक की मानसिकता और व्यक्तित्व निर्माण से इनका गहरा सम्बन्ध है।

मैंने कहा है—मैं बहुत भावुक, संवेदनशील और बेचैन तबीयत का आदमी हूँ। सामान्य स्वभाव का आदमी ठंडे-ठंडे जिम्मेदारियां भी निभा लेता रहते गत दुनिया से तालमेल भी बिठा लेता और एक व्यक्तित्व हीन नौकरीपन्ना आदमी की तरह जिन्दगी साधारण मन्त्रोप से भी गुजार लेता।

मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ। जिम्मेदारियां, दुखा की बसी पछभूमि और अब चारों तरफ से दुनिया के हमले—इस सबके बीच सबसे बड़ा सबान था अपन व्यक्तित्व और चेतना की रक्षा। तब सोचा भी नहीं था कि लेखक बनूंगा। पर मैं अपने विशिष्ट व्यक्तित्व की रक्षा तब भी करना चाहता था।

मैंने तय किया—परसाईं, डरो किसीस मत। डर कि भरे। सीने को ऊपर ऊपर बड़ा कर लो। भीतर तुम जो भी हो, जिम्मेदारी का घर-जिम्मेदारी के साथ निभाओ। जिम्मेदारी को अगर जिम्मेदारी के साथ निभाओगे तो नष्ट हो जाओगे। और अपन से बाहर निकल आओ। बाहर निकलकर सत्रम मिल जाने से व्यक्तित्व और विनिष्टता की हानि नहीं होती। लाभ ही होता है। अपने से बाहर निकलो। देखो, समझो और हमी।

मैं डरा नहीं। बेईमानी करने में भी नहीं डरा। लोगो से नहीं डरा, तो नौकरिया गइ। लाभ गए पद गए, इनाम गए। मैं जिम्मेदार इतना कि वहन की शांती करने जा रहा हू। रेल में जेब बट गई। मगर अगले स्टेशन पर पूड़ी-साग साकर मजे में बैठा हू कि बिता नहीं। कुछ हो ही जाएगा। और हो गया। मेहनत और परेशानी जरूर पडी। या कि बेहद बिजली पानी के बीच एक पुजारी के साथ बिजली की चमक स रास्ता खोजते हुए रात भर मैं अपनी बडी बहन के गाव पहुचना और कुछ घंटे रहकर फिर वही वापसी यात्रा। फिर दौड़ धूप। मगर मदद आ गई और शादी भी हो गई।

इही सब परिस्थितियो के बीच मेरे भीतर लेखक कैसे जन्मा, यह सोचता हू। पहले अपने दुखो के प्रति सम्मोहन था। अपने को दुखी मान कर और मनवाकर आदमी राहत भी पा लेता है। बहुत लोग अपने लिए बेचारा सुनकर सातोप का अनुभव करते हैं। मुझे भी पहले ऐसा लगा। पर मैंने देखा इतने ज्यादा बेचारा में मैं क्या बेचारा। इतने बिबट सघर्षों में मेरा क्या सघष।

मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लडने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे, इसीमें मैं अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा। तीसरे अपने को अविशिष्ट होने से बचाने के लिए मैं लिखना शुरू कर दिया। यह तब की बात है, मेरा खयाल है तब ऐसी ही बात होगी।

पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दुख के इस सम्मोहन-जाल से निबल गया। मैंने अपने को विस्तार दे दिया। दुखी और भी है। आयाय पीडित और भी हैं। अनगिनत शोषित हैं। मैं उनमें से एक हू। पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना-सम्पन्न हू।

यही वही व्यंग्य लेखक का जन्म हुआ। मैंने सोचा होगा--रोना नहीं है लडना है। जा हथियार हाथ में है, उसीसे लडना है। मैं तब टम से इतिहास समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक शीघ्र व्यक्तित्व बनाया। और बहुत गभीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।

मुक्ति अकेले की नहीं होती। अलग से अपना भला नहीं हो सकता। मनुष्य की छटपटाहट है मुक्ति के लिए, याय के लिए। पर यह बड़ी लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती है। अकेले वही सुखी हैं, जिन्हें कोई लड़ाई नहीं लड़नी। उनकी घात अलग है। अनगिनत लोगो को सुखी देखता हूँ और अचरज करता हूँ कि ये सुखी कैसे हैं! न उनके मन में सवाल उठते हैं, न शका उठती है। ये जब-तब सिर्फ शिकायत कर लेते हैं। शिकायत भी सुख देती है। और वे प्यादा सुखी हो जाते हैं। कबीर ने कहा है—

सुखिया सब ससार है, खावै और सोवै ।

दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै ।

जागने वाले का रोना कभी खत्म नहीं होता। व्यग्य लेखक की गर्दिश भी कभी खत्म नहीं होगी।

ताजा गर्दिश यह है कि पिछले दिनों राजनीतिक पद के लिए पापड़ बेलते रहे। वही से उम्मीद दिला दी गई कि राज्यसभा में हो जाएगा। एक महीना बड़ी गर्दिश में बीता। घुसपैठ की आदत नहीं है। चिट भीतर भेजकर बाहर बँठे रहने में हर क्षण मर्यु पीडा होती है। बहादुर लोग तो महीनो चिट भेजकर बाहर बँठे रहते हैं, मगर मरते नहीं। अपन से नहीं बनता। पिछले कुछ महीने एसी गर्दिश के थे। कोई लाभ खुद चलकर दरवाजे पर नहीं आता। उसे मनाना पड़ता है। चिरोरी करनी पड़ती है। लाभ थूकता है तो उसे हथेली पर लेना पड़ता है। इस कोशिश में बड़ी तकलीफ हुई। बड़ी गर्दिश भोगी।

मेरे जैसे लेखक की एक और गर्दिश है। भीतर जितना बबडर मह-सूस कर रहे हैं, उतना शब्दों में नहीं आ रहा है तो रात दिन बेचैन हैं। यह बड़ी गर्दिश का वक्त होता है, जिसे सजक ही समझ सकता है।

यो गर्दिशा की एक याद है। पर सही बात यह है कि कोई दिन गर्दिश स खाली नहीं है। और न कभी गर्दिश का अंत होना है। यह और बात है कि शोभा के लिए कुछ अच्छे किस्म की गर्दिशें चुन ली जाएं। उनका मेकअप कर दिया जाए, उन्हें अदाएँ भिखा दी जाए—योडी चुनवुली गर्दिश हो तो और अच्छा—और पाठक से कहा जाए—ले भाई, दग्य मरी गर्दिश।

फिक्र तौसवी

मर जम पर देवताओं ने आकाश से फूल नहीं बरसाए, क्योंकि वे हवशा के राजमहल पर फूल बरसाने में व्यस्त थे। वहाँ एक राजकुमार ने जम लिया था। यानी जम से ही मेरे और देवताओं के सम्बन्ध बिगड़ गए और अब तक बिगड़ हुए हैं।

यह ठीक है कि राजकुमार और साहित्यकार को एक ही तिथि पर और एक ही नक्षत्र में पैदा नहीं होना चाहिए। इसे आप विधि के विधान की एक नुटि भी कह सकते हैं। लेकिन देवताओं का रोल भी गैर शरीफाना नहीं होना चाहिए था। उन्हें फूला क उपयोग का समुचित ढंग आना चाहिए था और अगर नहीं आता, तो भगवान को कुछ 'इंटेलिजेंट' देवता पदा करन चाहिए।

मैं तौसा में पैदा हुआ अगर तौसा में पदा न होता तो लडकाना में पैदा हो जाता। टिबकटू भी कोई बुरी जगह नहीं थी लेकिन हर जगह मुझे फिक्र ही कहा जाता और हर जगह मेरा बाप चौधरी नारायणसिंह का मीर मुशी घनपतराय ही होता, जिसके घर आशा के विपरीत एक साहित्यकार जम लेता और देवता फूल न बरसाते केवल इन्हीं टेक्नीकल वजह से कि मीर मुशी को छत के नीचे डेढ़ सौ कमर नहीं हैं निफ डेढ़ कमरा है।

बीस वय बाद मर बाप ने मुझपर रहस्यादघाटन किया—तुम्हारे जन्म की सूचना मुझे जीतू सारवान ने दी थी तो मरे मुह से केवल इतना निकला था 'यह सातवा बच्चा है और शायद भाइयों की तरह भूखा मरने के लिए पदा हुआ है।'

अघात मेरे (पूज्य) पिता के लिए मर जन्म की महत्ता केवल अन्त तक सीमित थी—पाचवा छठा सातवा। परिणाम यह हुआ कि देवताओं के साथ-साथ अन्त से भी मर-सम्बन्ध बिगड़ गए और आज तक

बिगड़े हुए हैं।

अको को तो इंसान का भाग्य नहीं बनना चाहिए।

मगर जीतू सारवान मुझे अब नहीं समझता था, बल्कि एक बच्चा समझता था, जिसमें मासूमियत होती है। वह गाव का एकनात्र ऐसा व्यक्ति था, जिसने मुझे प्यार से देखा, मोहल्ले में गुड की टागरी बाटी और इतना सोचना भी निरर्थक समझा कि वह एक सस्ती और घटिया चीज बाट रहा है। वह केवल इस बात का कामल था कि खुशी बाटनी चाहिए, चाहे वह सस्ती और घटिया ही क्यों न हो।

और फिर एक दिन मुझे यूँ लगा जैसे जीतू सारवान की बटी फातो जवान हो गई है। और फातो को देखते ही मैंने भी छलाग लगाई और जवान हो गया। इस छलाग पर मुझे हैरानी हुई और खुशी भी हुई। और यह खुशी 'नेचुरल' थी। 'नचर ने हम दोनों के होठों पर गुलाब खिलाए और मेरे पिता और जीतू सारवान की दाढ़ी में सफ़द बाल उग आए। और मैं फातो के घड़े पर एक हल्का सा 'टन' करता हुआ ककड़ फेंका, जिसे उठाए वह कुएँ से आ रही थी। इस 'टन' से उसके सिर और छाती में एक आकषक तनाव आ गया।

—तुम्हें शरम नहीं आती! फातो ने तनतनाती छाती को परलू से ढापकर कहा।

—आती है। मैं मुस्कराया।

वह मुह फेर कर शरमा गई ताकि शरमाने की ओट में मुस्करा सके। और फिर कई दिन तक हम अपने दिल की धडकनों की भाषा समझते रहे और फिर दिल ही दिल में घोषणा की कि यह प्यार की भाषा है और इस प्यार में जीतू सारवान को वही मासूमियत नज़र आई जो एक बच्चे में होती है। और उसने मेरे बाप से कहा—मीर मुशी! तुम्हारा बेटा मेरी फातो के घड़े पर ककर फेंकता है

—उसे ऐसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि हमारा खानदान शरीफ है। मेरे बाप का खयाल था कि जिन बच्चों को बासी, सूखे टुकड़े पानी में भिगोकर खिलाए जाए वे भी शरीफ खानदान के बच्चे कहला सकते हैं। शराफत बासी टुकड़ों की खरीदी हुई दासी नहीं होती।

मेरा बाप भ्रम में खुश रहना बेहतर समझता था। मगर उस खुशी को नबरदार के लडके दाऊद खान ने एक दिन जबरदस्त भटका दिया। जब फातो गाबाब का सरे-गरूर बुलद किए कुए में घ्रा रही थी और मेरे कबर का इतजार कर रही थी तो दाऊद खान ने अपनी कालीनी कमीज के बाजू फातो के रास्ते में फैला दिए। वे बाजू कबर नहीं थे, बल्कि दाऊद उह प्रेमालिंगन का आधा समझ रहा था। उसने फातो को 'चैलेंज' दिया—मुझमें इश्क करो, वरना

—वरना ? फातो न वरना हूँ के लहजे में कहा। ऐसी 'हू' वह गाव में सिवा मेरे हरएक से कह सकती थी। किंतु जीतू सारवान के पास सिर्फ दो ऊट थे और नबरदार के पास तीन घोड़िया, पांच बल और छह शिकारी कुत्ते थे। इन सबने मिलकर फातो की सोते में उठा लिया और एक पहाड़ी कदरा में ले गए और फिर पहाड़ी कदरा से कुछ चीखें सुनाई दीं। और उल्लुआ ने मनहूस आवाज निकाली। और पहाड़ी कौब बुरलात हुए कदरा से भाग आए और मेरी छत पर आ गए। यह इश्क की और भासूमियत की और उस रूह की तौहीन थी, जिसे आगे चनकर शायर और साहित्यकार के चाले में ढलना था।

—ऐसा क्यों ? आखिर क्यों ? मैं बाप से पूछा, जीतू सारवान से पूछा। दातो ने एक स्वर में उत्तर दिया—वेटा, यह जग की रीत है जिसमें नबरदार और धानदार एक दस्तरखान पर बैठकर मुर्गी खाते हैं। और जिनके बच्चे बासी टुकड़े खाते हैं, मुर्गी उनकी फरियाद नहीं सुनती।

और फिर मैं रातो रात गाव से भाग गया। और गाव में किमी-को भी नहीं बताया कि मैं ऐसा जग को बदल दूंगा। और मुर्गी तथा बासी रोटी की दूरी को मिटा दूंगा। फातो को भी नहीं बताया। कस बताता ? उसने तो कुए में छलांग लगा दी थी। बासी टुकड़े ने अपने अपमान के बदले आत्महत्या कर ली थी।

अत आत्महत्या से भी मेरे सम्बन्ध बिगड़ गए। ऐनी फातो स भी बिगड़ गए, जो आत्महत्या करके समझती है कि इस धानदार और नबरदार के दस्तरखान स मुर्गी भाग जाएगी।

और फिर एक दिन यो हुआ कि मेरी नही मासूम बच्ची राजरानी, जिसके पास न राज था, न वह रानी थी, सिर्फ एक गला-सडा केला, और पुस्तकें थी, जिन्हें वह बस्ते में बांधे स्कूल जा रही थी, कि अचानक खतर का हॉन बजा। आकाश में विमान मडरान लगे। उन विमानों में कोई बस्ता, केला और पुस्तक न थी, बल्कि बम थे। और उहान कहा कि यह जग है। और अगर तुम स्कूल जाओगी, तो बम फेंककर तुम्हें खत्म कर देंगे, क्योंकि हमने पुस्तकें पढ़कर ही ये बम बनाए हैं। और मासूमियत पर यह बम मुझे यो लगा जैसे नबरदार का लडका दाऊद खान फातो ने घड़े पर अपने घोड़े का सुम मारकर कह रहा हो—मुझे इस्क करो, वरना

और मुझे क्रोध आ गया। मुझे मालूम न था कि क्रोध मनुष्य को अधा बना देता है। फिर मैं लाउडस्पीकर अपने कंधे पर रख लिया और गाव-गाव घूमन लगा—हम शांति चाहते हैं, शांति। किसके लिए? नही राजरानी के लिए। मासूम आखों में गुनगुनात टैगोर और कालिदास के लिए

और गाव के ऊबड खाबड रास्तों पर मुझे काटे चुभे भाडियो ने उलभाया, कीचड ने लथपथ किया। सूखी-मडी चाय उबलती भूख और हाठा की पपडियो ने मुझे भाले दिए कि यह पवित्र कत्त-य है। इतिहास पलटा जाएगा और भुर्गी तथा बासी रोटी की दूरी मिट जाएगी। और किसी फातो का घडा आत्महत्या नही करेगा। और फिर विमान का बम शरम से पिघल जाएगा और मासूम राजरानी का गला-सडा केला एक सेब में बदल जाएगा।

और उस सेब पर टैगोर की 'गीताजलि' लिखी जाएगी।

लेकिन जब मैं शांति का लाउडस्पीकर कंधे पर रखे चल रहा था, तो एक टीले पर मुझे बाबा गोवधन सिंह मिला, जो पन्द्रह बप तक केले का सेब में बदलने की खातिर जेल में रहा था। उसकी मासूम फातो को भी किसी बम से मार दिया था और वह आवेश में आकर बिद्राही बाबा बन गया था और अमरीका भाग गया था। वहा से दुखानी जहाज में बंदूकें भर लाया था। परंतु जहाज को बाबा और बंदूकों को समेत अडमक

जेल के दलदल में फँक दिया गया था।
ऐसा था बाबा गोवधन सिंह। उसने मेरे कंधे पर शांति की फास्ता
को बठ देकर उपहासपूर्ण कहकहा लगाया और कहा—तुम मूल हो
यगमैन।

—क्या शांति का आह्वान मूलता है, बाबा ?

—कैसी शांति ? किसके साथ शांति ? वह नथुने फड़वाकर
बोला—जो लोग शिकारी कुत्त छोड़कर टैंगोर के भीतों को भ्रमोडते हैं,
उनके साथ हम शांति स कैसे रह सकत है ? मुर्गी को तुमन पाला है।
परतु उसे नवरदार का बेटा थानेदार के साथ बठकर खा जाता है। क्या
हम उसके साथ शांति स रहे ! तुम्हारा बाप क्या काम करता है ?

—चौधरी नारायण सिंह का मीर मुशी था।

—बस वही ! उसने शांति का लाउडस्पीकर जोर स गिरा दिया।
तुम्हारे चेहरे पर जवानी म जो झुरिया है य उसी नारायण सिंह न
डाली ह। ये झुरिया तभी मिट सकती है, जब हम नारायण सिंह स मुद्
करेंगे, शांति नहीं।

क्या बाबा गोवधन सिंह मेर पिता की तरह सभ्रम म सुसा रहना
जानता था ? कुछ माह बाद सुना कि बाबा गोवधन सिंह का पीछा करत
हुए पुलिस ने उसकी रीड की हड्डी पर गोली चला दी। आरोप यह था
कि उसने किसी चौधरी नारायण सिंह की जागीर म झग्नास्त्र दबा रता
था ताकि उसकी फमल भक स उड जाए ! उस समय स शांति स भी मर
सम्ब घ बिगड गए।

क्या मैं सम्ब घा म बिगाड पंदा करन क लिए ही इस दुनिया म
झाया था ? नम्रतापूर्वक यह प्रश्न मैंने जैमिनीदास गगसाज स किया
जो मुझे स्राठ घट प्रतिदिन काम लेता था और दो झान प्रतिदिन दता
था। मैं उसकी 'भारत रगसाज कपनी म हसीनाघा क दुपट्टे और प्रनि-
टित लोगो की पगडिया नारंगी, गुलाबी, सुरमई रग म रगता था।
क्याकि मुझे मूल लगती थी और कपनी को इस भ्रम की जानकारी थी।
दो झान म दाल राटी तो मिलती थी लेकिन झालू गोभी की स्पेगल ग्ळी
नहीं मिलती थी। टावे के मालिक श्रीषद की मैंन साथ समझाया कि

‘स्पेशल’ सञ्जी के लिए मेरा मन बेहद ललचाता है, ‘लेकिन वह कहता— लालच बुरी बला है। शाम्शो भ इसे पाप कहा गया है।

मैंने सोचा शास्त्र शायद दो आने प्रतिदिन पाने वाली के लिए नहा लिखे गए।

निरंतर लालच से बोर होकर एक दिन मैंने जमिनीदास से कह दिया —मास्टरजी ! कभी कभी या लगता है जैसे मेरे और आपके सम्बन्ध बिगड जाएंगे।

वह बोला—कोई हज़ नही। मेरे सम्बन्ध तो उस सिपाही स भी बिगड गए है, जो मुझसे पाच रुपये प्रतिमास रिश्वत लेता है। तुम क्या हो ? तुमको तो इतना भी ज्ञान नही कि नारंगी और नीला रंग मिलन से कौन सा रंग जन्म लेता है

मैंने कहा—मैं तो इतना जानता हू कि थानेदार का रंग जब करसी नोट के रंग में मिलता है, तो मछली का रंग जन्म लेता है जिस प्राप हर गाम गाम मछलीफरोश से खरीद कर खाते हैं। यह सुनकर जमिनी दास ने मुझे अत्यंत भद्दी गाली दी और नौकरी से निकाल दिया और कहा —तुम दुपट्टे रंगने की कला कभी नही जान सकते। अधिक से अधिक तुम पगडी और दुपट्टे के द्रव्यनुप पर एक कविता लिख सकते हो। अत हू और फू !

मैंन थानेदार से रिपोर्ट की। उसने कहा—धगरचे अभी जमिनीदास में मेर सम्बन्ध अच्छे नही, फिर भी रंगो के बारे में उमका दृष्टिकोण सही है। वह रंगो की भाषा अधिक समझता है, तभी तो मछली खाता है।

मैंने दिल ही दिल में थानेदार पर अपनी ‘हू’ उडेली और भाग गया, भागता गया यहा तक कि भूर्च्छित होकर गिर पडा।

वास्तव में भागते-भागते मैं तेल चमेली स्पेशल की फम के पास से गुजरा था, जिसके मालिक धूमौगल ने मुझे पिछडेपन स हाफते दखकर मेरे हाथ में अश और स्याही का डिब्बा पकडा दिया कि हमारा तेल का इस्तहार शहर भर की दीवारो पर लिख आओ, तुम बहुत अनति कर जाओगे। जिस व्यक्ति को दो ग्राम मिल जाए उस अनति कहते हैं। लेकिन मैंने सोचा कि दो ग्राम बाटने का श्रेय उन्हें मिलता है, जो तेल

शराब के नशे में गाला को गड्ढेरी समझकर चत रहा था तो कह रहा था—मैं इन्सानियत परस्त हू। इस बेहोश छोकरे को सड़क से उठा लाया, क्योंकि इसकी नाक बड़ी मासूम है। मुझे धोखा नहीं देगी। मैं इसे अपना शागिद बनाऊंगा।

लेकिन फिर दूल्हा दुल्हन के भागने से पहले छापामार पुलिस भा गई और नौसरवाज के शागिद को गिरफ्तार करके ले गई। और फिर नौसरवाज को जीवन भर न पकड़ सकी। पुलिस को उसकी और मरी नाक की पहचान नहीं थी। तभी से नाक और पुलिस से मेरे सम्बन्ध बिगड़ गए और अब तक बिगड़े आ रहे हैं।

और फिर मुझे याद नहीं मैं कब हज़ गया और जसे मुझपर सदिया गुज़र गई। आदि से अत तक फँलने वाला इतानी कारवा गुज़र गया और मैंने देखा कि कुछ घाव हैं, कुछ पपडिया हैं, कुछ अंगारे है जो मेरा निरतर पीछा कर रहे हैं। उहाने मुझे गया के एक जगल में रोक लिया। वहा शायद एक घना पेड था और एक बौद्ध, आनी बँठा तपस्या कर रहा था। और फिर गया के आकाश से एक लेखनी गिरी और आवाज आई— जहा जहा से भागे हो वहा वहा वापस जाओ और इस लेखनी से तपस्या करो। और इस तपस्या से घाव को और पपटी को और अंगारे को हप, भाव और शब्द प्रदान करो। और यह भगवान का आदेश है और याद रखो भगवान का आदेश अटल होता है

और इस आवाज में हप था जो मुसामो में फूल की तरह खिल उठा और मैंने लेखनी हाथ में पकड़ ली, जिससे ये फूल सुगंध देन लगे और मुझे थो लगा जैसे यह मेरा उद्देश्या की सुगंध है। बेले और सेव की दूरी को समाप्त करने वाली सुगंध है और इसी सुगंध पर तँरते तँरते मैं दुनिया को यह बताने में समथ हो सका कि देवताओ ने मेरे जन्म पर फूल क्या न बरसाए और कि भगवान केवल एक क्षत पर इटलिजेंट देवता पैदा कर सकता है, अगर फाती आत्महत्या न करे, बल्कि गोवधन सिंह बाबा की तरह नौसरवाजो से युद्ध करे।

राही मासूम रजा

मैं अकस्मर सोचता हू कि व्यक्ति की परिभाषा क्या है। 'मैं' क्या चीज होता है ? मैं तो अपनी एक भीड़ हू। मैं केवल एक लेखक नहीं। मैं किसीका बेटा, किसीका भाई, किसीका पति और किसीका पिता भी हू। किसीका दोस्त और किसीका दुश्मन भी हू। मैं वह आदमी भी हू जो किसीके लिए काम करना है। मैं वह आदमी भी हू जिसके लिए कुछ लोग काम करते हैं। मुझमें और बहुत से लोग भी होंगे। मैं वह 'हिपोक्राइट' भी हू जो अपने डॉक्टरों के बजाए लतीफें सुनकर सिर्फ हसता ही नहीं, बल्कि जी लगाकर हसता है। जो घण्टों अपने वॉरिंग पडोसियों को बरदाश्त करता है, जो खराब दोस्तों की तारीफ करता है जो इसी प्रकार के और भी बहुत से घटिया काम करता रहता है यह 'मैं' 'व्यक्ति' तो हरगिज नहीं। यह तो अच्छा सासा मोहल्ला है।

तो प्रश्न यह उठता है कि यह जो मेरी भीड़ है इसमें बात किसकी चलती है ? कागड़े से तो लेखक की बात चलनी चाहिए क्योंकि घर में उसीके पसीने का चिराग जलता है। पर ऐसा होता नहीं। लगभग हमेशा लेखक को अपना जी मारना पड़ता है।

सामने जो आदमी बठा चाय पी रहा है वह लेखक के पास नहीं आया है। वह तो मालिक मकान है किरायेदार से किराया बढाने की बात कर रहा है। और जो आदमी उसके सामने बठा उसे फुमलाने की कोशिश कर रहा है, और दिल ही दिल में उस मालिक को धक्का भी मार रहा है वह भी लेखक नहीं, क्योंकि लेखक तो बेचारा अलग थलग बैठा एक कहानी लिख रहा था कि मालिक मकान के आने की खबर मिली। किरायेदार उठा तो उसके साथ लेखक को भी 'सिटिंग रूम' में आना पड़ा यही मुझपर और बहुत कुछ भी गुजरती रहती है। पर इन बातों पर न पाठक सोचता है, न आलोचक। पाठक के पास पसद-नापसद

की तलवार है। वह यह तलवार भाजता रहता है। और आलोचक बड़-बड़े और बूढ़े शब्दों के पत्थर लुढ़काता रहता है। रुककर मरी खरियत कोई नहीं पूछता।

कोई लेखक शोक स बुरा नहीं लिखता। मैं उन लेखकों की बात नहीं कर रहा हूँ जो केवल बुरा ही लिखते हैं और केवल अपने लिखे को महत्त्वपूर्ण साहित्य मानते हैं। मैं साहित्यकारों की बात कर रहा हूँ। उन साहित्यकारों की बात कर रहा हूँ जो अच्छे और बुरे साहित्य में फर्क कर सकते हैं। फिर भी सदा अच्छा ही नहीं लिखते। यह साहित्यकार बड़ी मुश्किल में कोई घटिया चीज लिखने पर तैयार हो पाता है। जानत-बूझते बुरा लिखना बड़ा मुश्किल काम है। पर इसे वही लोग समझ सकते हैं, जो लिखने का काम करते हैं। वह लिखना पड़ता है जो लिखने को ही नहीं चाहता। पर लिखता हूँ क्योंकि मैं केवल लेखक ही नहीं हूँ, मैं वह दूसरा आदमी भी हूँ।

सत्ताईस साल स लिख रहा हूँ। जिन्दगी का खाता देखता हूँ तो पता चलता है कि बिका ज्यादा, खरीदा कम। पाया कुछ नहीं। आत्मा का बजट 'डेफिसिट' पर चल रहा है।

बीस बार्डम बरस तक लिखना पेशा नहीं था, शोक था। शोहरतें पाकर खुश हो लिया करता था। काफी मशहूर हुआ। बड़े 'ग्रैंटोग्राफ' बाट। पर उन दिनों भी दिल दुखता ही रहता था। उन दिनों की एक कविता याद आई। शीपक था 'सालगिरह'

आज मैं अपने घर में त हा
तीस और तीन चिराग जलाए
सोच रहा हूँ
आखिर मैंने क्या खोया है
आखिर मैंने क्या पाया है

यह शायद सन् साठ की कविता है। घाटे का यह खयाल मुझे उन्ही दिनों स परेशान कर रहा है

कोई मुझे इक कागज दे दे
 ऐ जहमो से चूर उमलियो
 मेरे कलम की सुदक रगो को
 आखिरी बार अब खून बज दो ।
 तीस और तीन चिरागा की इस लीफजदा
 सी रोशनी मे आज

इस कागज के इक तरफ तो खेमारा लिख लू
 और इक तरफ मुनाफा लिख लू
 क्याकि हमारी इस दुनिया मे
 जिदगी चाह जैसी भी हो
 दस्तावेजें ठीक लिखी हो
 क्याकि हमारी इस दुनिया मे
 घान्मी तो दो चार बरस
 दम-बीस बरस मे मर जाता है
 लेकिन यह दस्तावेजें जिंदा रहती हैं ।

यह है मेरे दिल का दद । और इस दद म कोई शरीक नही होता ।
 वह हमारा आदमी भी यह दद नही समझता तो किसी और से क्या
 गिनायत करू ?

मरी पत्नी मुझे बहुत चाहती है, क्योंकि उसने मुझे बडे महग दामो
 लिया है । तो मैं उस इस दद का राज बताकर क्यों उदास करू ? दद
 की यह सलीब उठाए उठाए घूमता रहता हू

मरा प्यार अब एक सलीब है
 जिसकी मैं कधो पर उठाए
 बस्ती-बस्ती घूम रहा हू ।
 यह कधा जब दुख जाता है
 इस कधे पर रख लेता हू ।

लेकिन जब दोनों कंधे दुख जाएंगे, तब क्या करूंगा ? अपने आपने यह पूछते डर लगता है। शायद इसीलिए अपनी कविता 'यादा के काले जगल में' में मुझे लिखना पड़ा

यादों के काले जगल में
मैं अपने को डूब रहा हूँ

शायद मुझको खा डाला हो
आदमखोर दरस्तो ने ।
मैं जो कभी एक नन्हा-सा चंचल बच्चा था
वह नन्हा सा चंचल बच्चा
इस जगल की तारीकी में डूब गया है ।

फिर मैंने 'प्यास और पानी' में लिखा

घूप के इस काले सहारा में
सब तन्हा हैं
इक अगारा है कि जमी है
साए का इक हल्का-सा घब्बा भी नहीं है
जिसकी गोद में बैठ के कोई
घास की उगली से शबनम के न्तरे चाटे ।

और फिर मैंने अपनी वसीयत लिखी

मैं इस दुनिया से क्या मागू
मुझे बेचा है इस दुनिया ने बरसों
और न जाने कब तलक यूँ ही
हसी जिल्दों की खजौरों पिहा कर
यह गुलामों की तरह मुझको

हर इक आवाज चीराहे पे ले जाएगी और मज्जमा लगाएगी
 मैं इस दुनिया से क्या मागू
 मेरी नज्मो की कीमत जिन्दगी मे इसने कब दी थी
 जो अब देगी !

यह सन् बासठ की बातें है। तब तक लिखना मेरा पेशा नहीं बना था। फिर मेरी आवाज इतनी कड़वी क्यों है? क्या इसलिए कि मैं एक बक मे कलर्की कर चुका था? क्या इसलिए कि अपने एक दोस्त के नफे के लिए नाम बदल बदलकर कहानिया घड रहा था? एक बड़ी कड़वी बात याद आई। मेरी जेब खाली थी। अब्बा नाराज थे। एक प्रकाशक ने शायद दो सौ रुपये 'एडवांस' दिए कि 'गुनाह की रातें' जैसी कोई कहानी लिख दू। पैसा की जरूरत थी। ले लिए। तब यह हुआ कि मैं चूकि पगतिशील लेखक हूँ, इसलिए अपने नाम से कोई अश्लील कहानी नहीं लिख सकता। सौ-सवा सौ पने लिख डाले। फिर खयाल आया कि मैं दुनिया से तो यह बात छिपा लूंगा, पर अपने आपस मैंने छिपाऊंगा? मैंने वो सौ सवा सौ पने फाड़ दिए। पर यह तब की बात है, जब मैं न पति था, न पिता। यदि होता तो क्या करता? थोडे दिनों पहले तक यह बात याद करके मैं शरमा जामा करता था। अब सिफ उदास होकर रह जाता हूँ क्योंकि अब मैंने उस दूसरे आदमी से सुलह कर ली है। यहीं एक बात और बड़ी सफाई से कहना चाहता हूँ। अब्बास हुसैनी, उस बेनाम प्रकाशक, ही की तरह कम्युनिस्ट पार्टी के लिए भी जान बूझकर बुरा लिखा है। पहले गौर आखिरी के लिए शमिदा नहीं हूँ, पर यह बात फिर भी सही है कि मैंने लेखक को अपने घर मे हमरे दर्जे का शहरी शुरू बनाया है।

पर जब तक मैं अलीगढ मे रहा, तब तक उस बेनाम प्रकाशक के सिवा किसीन मुझे खलील नहीं किया। मैंने जान-बूझकर जो बुरी कविताएँ और कहानिया लिखी, उनपर मैं शमिदा नहीं हूँ। दोस्ती और राजनीतिक बफादारी के सामने मैं अब भी सर झुकाने को तैयार रहता हूँ।

मेरे मुह का मजा वास्तव मे अलीगढ के आखिरी दिना मे खराब

हुआ। और वह कड़वाहट अब तक मेरे मुह में भरी हुई है। मेरे उप्यास 'टोपी शुक्ला' में मेरे अलीगढ़ की कुछ भलकियाँ हैं।

वहाँ के उलू विभाग में पहली बार मुझे पता चला कि सब बीलना घाट का काम है। ईमानदारी से काम करना घाटे का काम है। मैं यह जाना कि तरक्की करनी है तो अपने आसपाम के आले अहमद सुहरो और डाक्टर नूरुल हसनो को भवखत लगाना चाहिए। मुझे इस बात पर फग्न है कि मैंने इन दामों तरक्की करवा स्वीकार नहीं किया—यह शेर मर है

ये ठीक है कि अघेरा नहीं है महफिल में
मगर चिराग पे क्या-क्या गुजर गई होगी।
जजीरो में जान पड़ी खू दौड़ा
मौसम गुल ने स्तनी देर लगाई।
एसा लगता है कि अघेरा जीता
परवानो ने नाहुक जान गवाइ।
हम जिसके पीछे भागे है इतना
गायद परछाई थी, हाथ न आई।

लेकिन मैंने हिम्मत न हारी। मैं यही गुागुनाता रहा

हम भी जुगनू की तरह सहारा में
शाम होती है तो जल जाते हैं।

मेरा काम जलकर रोशनी करना है। अपनी तकदीर का मानम करना मेरा काम नहीं। दीवानगी के इन्ही दिनों में मैं अपना उप्यास 'आधा गाव' लिखा। आधा गाव का जिन मैं सासतोर पर कर रहा हू। इस उप्यास की गिनती हिन्दी के अच्छे उप्यासों में हुई। अब उसका हिासब दल्लिए। तीन बरस में लिखा गया, एक बरस में छपा, तीन बरस में बिबा। यानी सात साल का फेर है। मूल्य था दस रुपये, छपा था

दो हजार, यानी पूरे गठिन का काम हुआ बीग हजार। मेरी गैपली हुई तीन हजार। (यदि पूरी मिन जाए तो) यानी चार गौ घट्टादम गये पत्नी के मंगल। उगभग पत्नी के रूप उतर पर मंगलवार। यह दस है धान एक घन्टा उपवास निगन का बीमा। साढ़े पत्नी के रूप माहवार। प्रवाणक दमन म नी काफी मार लेना है। धान किम मुह स यह मोग करन है कि मैं घन्टा निगन रहु? धान गाय घन्टा निगन रहु ता बीऊ पन। पर काम यह दूसरा धाम्मी पर का हिमाव मेकर बठ जाता है

किगया	600/-
रागन	425/
बन्ना की पीम	27/-
दवा-गार	100/-
घतिरिया मघ	300/
मपत्पानी	400/-
चदे	50/
बितावे	100/-
कुन	2002/-

मीघा हिमाव यह हुआ कि धाम्मी साढ़े पत्नी के रूप माहवार और मच तो हजार गये माहवार। उगभग 1965 गये माहवार का घाटा है।

घन्टा निगनर जीन की कोई मूरत निधानिए त।

बम्बई में छट बग्न रहन के बाद दूसरा के चार में सच बोलन की हिम्मत नहीं रह गई है। पर धान चार में सच बोलन की घादन भी तक नहीं छूटी है। मुना न चाहा और हालात यही रह तो चद बरमा म सुधरकर लेखक स धाम्मी बन जाऊगा।

जिसन 'भाषा गाव, 'टोपी गुवना, हिम्मत जीतपुरी' और 'धोस की बूद' जग उपवास लिखे हैं वह बटा बहादुर धाम्मी था। पहले तीन उपवास उन दिना की यादगार हैं जब लिखना मेरा पना नहीं बना था। परंतु जब धाम्मी छूटा और मैं अपने परिवार के साथ बम्बई

आया, तो मेरे पान एक हजार रुपये थे और एक अजनबी भविष्य था । और मेरी बेटी भरियम पैदा होन वाली थी पर अभी तक मैं टूटन को तैयार नहीं था । मैं इसीमे मगन था कि लेखक हूँ लेखक । उल्लू का पटठा । भारती और कमलेश्वर ने साथ न दिया होता तो अस्पताल का बिल अदा करके मैं अपनी पत्नी और बेटी को अस्पताल से घर भी नहीं ला सकता था । तस्वीर का यह वह रख है, जिस पर न पाठक की निगाह पडती है और न आलोचक की । परतु मैं जो यह जिंदा जी रहा हूँ, इस वास्तविकता से आखें नहीं चुरा सकता । मैं 'आधा गाव' लिखकर जिंदा नहीं रह सकता । और 'आधा गाव' लिखूंगा कमे यदि जिंदा ही नहीं रहूंगा ? दो वरस से एक उपयास 'चुटकी भर धूप' लिख रहा हूँ । 70 पान लिख पाया हूँ । यह रपतार तब है, जब लिखना पेशा बन चुका है । मेरे लेखक को वह दूसरा आदमी छापकर बैठ गया है । मैं लेखक से 'डायलॉग राइटर' बन गया हूँ । 'डायलॉग राइटर' होना कोई बुरी बात नहीं । फिल्म एक बहुत बड़ा माध्यम है । घपला यह है कि इसमे मुझे लिखने की आजादी नहीं है । मैं 'डायलॉग राइटर' हूँ पर लोगो का ख्याल है कि 'डायलॉग' के बारे मे मैं कुछ नहीं जानता । मेरे अलावा हर आदमी को यह अधिकार है कि वह कलम उठाए और मेरे लिखे हुए सीन को 'ठीक कर दे' । मैं (और मेरी ही तरह के दूसरे तमाम लोग) इस जिल्लत को बरदाश्त करता हूँ—क्योकि मुझे 'चुटकी भर धूप' लिखना है ।

जब सारा घर सो जाता है, तो मैं सोचता हूँ कि वह राही मामूम रजा क्या हुआ जो मेरे साथ बबई गया था ? मुझे अपने आपसे नफरत होन लगती है और तब मेरी चार साल की बेटी करवट लेकर मुझपर अपना पाव रख देती है । मैं उसके पर को चूम लेता हूँ और अपने आप से मेरी नफरत कुछ कम हो जाती है ।

क्या मैं अपनी बेटी को जिंदा और खुश रखने के लिए एक लेखक को नहीं मार सकता ? जरूर मार सकता हूँ । और यदि आप मुझे जिंदा रखना चाहत हैं तो मेरी तनरवाह कुछ बढाइए । साडे पतीस रुपय माहवार मैं जिंदा रहना मेरे बस की बात नहीं है ।

कमलेश्वर

एक घमौर कह जान वाले घर में गरीब की तरह रहना, खाना खाकर भी भूता उठना, तबलीपा में भी हसना, लडकपन में भी बड़े की तरह पैमले लना—यह मेरी आदत नहीं मजबूरी थी ।

एक दिन बैठक में लगी दो तस्वीरों को दिखाते हुए मेरे बड़े भाई सिद्धाथ ने कहा था—“यह तस्वीर बाबा की है और यह बाबू जी की है—तुम्हें कुछ याद है बाबूजी की ?”

मैं चुपचाप मर हिना दिया था—“नहीं” । तब मैं चौथे दर्जे में पढ़ता था । सिद्धाथ ही ने बताया था—“बाबूजी का हाटफेल हो गया था तब तू बहुत छोटा था बाबा को मैंने भी नहीं देखा ।”

घर में तमाम तस्वीरें थीं और घर में हरेक व्यक्ति ऐसा था जिसने किसी एक को देखा था—बाकी की सिर्फ तस्वीरें ही देखी थीं ।

जब मैं समझदार हुआ तो मुझे सिर्फ वह तस्वीरें ही देखने को मिलीं जो बैठक की दीवारों की फानिस पर लटकी हुई थीं । इन तस्वीरों से ही मुझे अपने परिवार वालों का परिचय मिला था यादा से उतर जाने वाले परिवार का परिचय ।

हर बारिश में वे तस्वीरें धुधली पड़ती जाती थीं । मेरे बाबा की तस्वीर तो बहुत ही धुधला गई थी, ठीक भारते दु हरिश्चंद्र की तस्वीर की तरह । तब मुझे भारते दु हरिश्चंद्र का पता नहीं था । मेरे बड़े भाई सिद्धाथ ने दीवार से बाबा की तस्वीर उतारकर उसकी सहायता से एक नई तस्वीर बनानी शुरू की थी ।

सिद्धाथ से मेरा जीता जागता सम्बन्ध था लेकिन बाबा से बहुत ही ठण्डा, दूर का और श्रद्धा का सम्बन्ध था । कई दिनों तक सिद्धाथ वह तस्वीर बनाते रहें थे, उन्होंने ठीक वैसे ही तस्वीर बना ली थी । और उसे क्रम में जड़वाकर फिर दीवार से लटका दिया था ।

घर, बीते हुए तथा आने वाले दिना के बीच जी रहा था—वत्तमान इन्ही दो घागो के सहारे लटका हुआ था। जो बीत गया वह गौरवणपूर्ण था। भविष्य बहुत अच्छा, सुन्दर एव सुखदायक होगा, क्योंकि सिद्धाय बहुत होनहार थे। तभी सिद्धाय इस दुनिया से सिधार गए और अमीर कहे जाने वाले घर में गरीब की तरह रहना, खाना खाकर भी भूखा उठना, मुश्किलों में भी हस पाना, छोटा होते हुए भी बड़ा की तरह फैसले लेना मेरी मजबूरी बन गई थी।

सिद्धाय की भी सिर्फ तस्वीर रह गई थी और भविष्य स हमारा सम्बन्ध टूट गया था। सिद्धाय से बड़े वाले भाई सुन्दर भविष्य की खोज में पहले ही इस छोटे से बस्ते से निकलकर अपने हालातों से लड़ रहे थे।

वह दूसरे महायुद्ध का जमाना था। जागीरदारी का वातावरण खत्म हो रहा था। नौकर चाकर चले गए थे, गाय भसा को जिंदा रखने के लिए गाव में भेज दिया गया था, लेकिन हम लोगों के जीवित रहने की कोई सुरत नजर नहीं आती थी। मा रात ढाई तीन बजे उठकर हाथ में कपडा लपेट-लपेटकर कुट्टी काटती, चक्की चलाती बतन घोंती और सुबह होते-होते नहा धोकर पुरान जमींदार घरान की इज्जतदार मालकिन हो जाती। मीहल्ले वाला के घावा पर भरहम लगाती और रात को चुपचाप रोया करती।

भविष्य को जीत के लाने वाले सैनिक सिद्धाय के कपडा की सीवन में खुद बैठकर उघेडा करता था, ताकि मा को तकलीफ न हो। होली, दिवाली पर मा अपनी कोई बड़ी सभालकर रखी सिल्क की पुरानी साडी निकाल लाती और घण्टो एव एक कतरन का अदाज लगाती—“अगर आस्तीन छोटी कर दू तो दो कुर्ते बन जाएंग एक तेरा, एक मना का, मुनी की फाक का घेर भी निकल आएगा।’

और वत्तमान से उलझने वाले बड़े भाई साल भर बाद जब घर आते थे तब हमें पता चलता था कि बाजारा में बहुत सी चीजें बिकती हैं कुछ वह हमारे लिए लाते थे जिन्हें कल' के लिए बनसो म बन कर दिया जाता था और घर से नौकरी पर वापस जाकर बड़े भाई अपना दूध

और घरलवार बन्द कर दिया करते थे आखिर खच कहा से आएगा ।
बाजार मे जहा मेरे गौब की चीजें बिकती थी, मेर लिए नही थी ।
बड़े भाई साहब जब अपना पट काटकर कुछ रुपया बचात थे ता उन
बाजारो की एक बहद सकरी लिटकी मेरे लिए खुलती थी और फिर साल
भर के लिए बन्द हो जाती थी ।

मण्डी मे घनाज धी गुट, घानू कपास—सब कुठ था, पर मा की
घोती के घाचल मे एक दो नोट और कुछ सिक्के थे और जब न घनाज
लेने जाता था, स्वय दुकानदार बडा तराजू पीछे भरका कर मवम छोटे
तराजू मे मेरे लिए चीजें तोलता था ।

दुनिया के इस वर्ताव स मेरा अपमान होता था । मेरी बहुत अच्छी
मा और सघपरत भाई का अपमान होता था लेकिन वे दोनो दुनियादार
थे, मैं नही था । सिद्धाथ के कपडे पहन कर मैं भविष्य क सपन देखा करता ।
भविष्य की उज्जवल बनाने क इराये और सपने बहुत मामूली हो थे जैम
मा के लिए चश्मा अपने लिए जीन की गेंद और गैड किताबें, भाई क
लिए नई चप्पत—इस बार आए थे तो जूता बहुत घिस गया था ।

लेकिन मा के वैष्णव विश्वास मुझे विद्रोह मे रोकते रह और यह दबी
हुई बगावत बहुत ही अप्राकृतिक ढग म उभरन लगी । वह एक दु ख
दायक प्रसंग था और उस कुसमय म मेर सहायक थ मेर सहपाठी । पडाई
की और से मेरा ध्यान उन मास्टरजी न हटा दिया था जो मनपुरी की
तम्बाखू खाकर गुस्सा होते थे तो मुह से फुव्वारे से निकलन लगते थे और
जब पीटत थे तो पीटते पीटत बेहाल कर देत थे । मैं हमेशा कुत्ते के मोचे
छोटी कुर्सी की गद्दी बाधकर जाया करता था और काछी मास्टर की मार
ढालने की योजना बनाया करता था ।

कस्बे के स्कूल मे दुश्चरित्र मौलवी और मोहल्ल के चबूतरों पर बैठे
बदमाश और सावारा पहलवान थे माटर मंडडा पर बदमाश डाइवर
और क्लीनर थे और था अधकार—जो शाम स छाने लगना था । पूरा कस्बा
अधेर की चादर म लिपट जाता था । लडाई के दिनों मे पढ़ने के लिए नी
तेल नही मिलता था । तब हम कुछ दोस्त गीशिया और कुम्पिया लकर
म्युनिस्पेल्टी की तालटेनो स तेल चुरान के लिए निकल पहत थे । मुझे

आज तक दुल है कि मैं अपने पढ़न के लिए कभी भी नई किताबें नहीं खरीद पाया। जब मेरे सहपाठी अपने पिता के साथ किताबों की दुकान पर जाकर कोस की नई नई किताबें कापिया खरीदत थे तो मेरी आंखों में आसू आ जाते थे। मेरे साथ कोई न होना था। चोटें लगतीं तो मैं दद स कराहता, घुटना पकड़े बीच रास्ते में उठता बैठता, अकेला अस्पताल पहुंच जाता था। मुझे अकेला देखकर जालिम कम्पाउंडर वडी बरहमी से घाव को दबा दिया करता था। मैं दद से विलविला कर सहारे के लिए जब कभी उसके वाजू को पकड़ लेता तो वह मेरा हाथ बुरी तरह भटक कर डाटता था और मैं अपने आसू दवाये मरहूम पट्टी करवा लेता था। वहां स निकलकर मैं इमली के पेड़ के नीचे बैठकर रो रोकर अपना मन हल्का कर लिया करता था।

गर्मी की छुट्टियों के बाद जब स्कूल खुलता था तो वहां जाने का उत्साह मन में नहीं होता था। पुगनी पुस्तकें—बहु भी पूरी नहीं, कापिया खरीदन की पैसे नहीं होते थे, इसलिए भाई साहब के जाने की प्रतीक्षा रहती थी कि वह आएंगे तो सरकारी कागज के दस्ते दो दस्त साथ लाएंग और तब मेरी बे माप की कापिया बनेंगी। मा अपनी पटी धोतियों की किनारिया लपेट लपेटकर रखती रहती थी और स्कूल खुलत ही मेरे लिए उन किनारियों का नया बस्ता सी देती थी। एक आने की रबड़ या स्केल के लिए मा से पैसे मागत हुए मुझे डर लगता था, क्योंकि इससे मा की निपट गरीबी खुल जाती थी और व अपनी विवशता में झुंझला जाया करती थी। तीन-तीन दिन मैं भूगोल की कक्षा में नहीं जा पाता था, क्योंकि रामबाबू जैन की दुकान स दुनिया का नबशा खरीदने के लिए मा से कहने की हिम्मत नहीं पडती थी। जब किसी मनचले साथी ने बताया कि पिछली दीवाली पर रामबाबू जैन पाच सौ रुपये जुए में हार गया तो मुझे राहत मिली।

कस्ब में जो अफसर आत थे वह बडे ठाठ स रहत थे। उनके लडके गुलदस्ता की तरह सजे हुए स्कूल आत थे और सरकारी स्कूल के हमारे मास्टर जी उहे हमशा मानिटर बनाया करत थे। यह तब होता था जब मैं अपनी सारी निराशाओं व वावजूद दर्जे में ज्यादातर अश्वल आया

करता था। यह सच्चाई मेरे लिए असहनीय होती थी। रिसेस में सब लड़के प्याऊ के पास लगे रामभरोसे के खोच पर पहुंच जाया करते थे और दवाकर चाट मिठाई खाया करते थे और आनू की सिक्की हुई टिकिया दखक मेरा जो बहुत लवचाना था, लेकिन प्यास लगी हान पर भी मैं उधर नहीं जाता था। रिसेस के बाद जब टिकिया ख म हो जाती थी तो मैं पानी पीन जाता था और खोचे की बची हुई चीजों पर उचटती हुई नजर डालकर तौट आता था।

दरजे में मेरे इनाम हमरा को द दिए जात थे और फीस क लिए मुझे बहुत अपमानित किया जाना था। जब तक सिद्धाथ थे, मरी फीस आधी हो जाती थी, उनके बाद फीस के लिए फिर कभी मेरी अर्जी मजूर नहो हुई। तब सिद्धाथ ने मेरे मन में एक उद्देश्य को जगाया था और मैं सालाना इन्त-हान में प्रथम आकर वजीफा पान की ठानी थी। मैं छमाही मता प्रथम आ जाता था लेकिन सालाना इन्तहान में हमेशा तहसीलदार या जज साहब का लड़का ही प्रथम आया करता था। प्रथम आना मेरे लिए पढाई के नजरिए में उतना जरूरी नहीं था जितना कि आर्थिक नजरिए से।

आखिर सालाना इन्तहान में मैं ही प्रथम आया। यजीफे के रुपया के लिए सिद्धार्थ मुझसे मरत मरत भी पत्र लिखकर पूछते रहे कि मिला या नहीं, लेकिन उनके मरने तक मुझे कुछ न मिला और जब मिला तो चार पण्ड में आधे रुपय काट लिए गए थे। इन छोटी छोटी कठिनाइयों में, जो उन समय मेरे छोटे में अस्मित्व के लिए बहुत बड़ी थी, मुझे भिभीड कर रख दिया था। माइकिल वाले ने मेरी साइकिल छीन ली थी क्योंकि मैं मरम्मत का पैसा नहीं दे पाया था। मनी मा उन छोटे-छोटे किरायदारों पर बिगडती रहती थी जो पच्चीस पच्चीस साल से दो-दो तीन-तीन रुपये मासिक पर भकान या दुकानों लिए बडे थे, जिन पर दो-दो साल का किराया बढ़ा हुआ था। और जो बमर ताड गरीबी से हारकर हर समय यही बहा करत थे, मालकिन अब इस उमर में हम पर दया करो—इसी दरवाजे से हमारी अर्थां उठेगी।" सभी किरायदार ऐसे थे जिनके लड़के काम की खोज में आगरा, फीरोजाबाद या बानपुर की ओर चल गए थे, जिनका अपने मा बाप से कोई सम्बन्ध न रह गया था।

धीरे धीरे मा की आँखों के आसू बिल्कुल सूख गए थे। वह निपट सूनी आँखों से सपाट दीवारों और अधर सून कमरा को दखती रहती थी और उह दिल के दोरे पढ़ने लगे थे। फिर भी वह कुछ नहीं कहती थी। गली मोहल्ले के हर सबट में दूसरों के साथ खड़ी होती थी और इनाजाबाद में रहने वाले भाई साहब के बच्चा तथा बहू के लिए धीरे धीरे चीजें जमा करती रहती थी। जब भाई साहब आत थे तो वह सबके लिए कुछ न कुछ भेजती थी— 'दुल्हन के लिए घोड़ी, मुनी के लिए फ़ान, कुछ बनरी-पापड़ हैं—अचार डाल दिया था, यह गढ़ना बना लिया है बच्चे के लिए—एक कपडा पडा था।' भाई का आना बहुत ही खुशी का और उनका लौटकर जाना बहुत दुःखदायी होता था। मैं और नी अक्लपन महमून करने लगता था लेकिन मा थी कि सब कुछ चुपचाप भेज लेती थी। वही अपमान न हो, इसका उह हमेशा ध्यान रहता था और घना पट काट काट कर भी वे किसी मुहबोले पोत या नाती के लिए कुछ भेजती रहती थी। सत्रात और दूसरे त्योहारों पर पण्डितजी के लिए परात भरकर धान भेजती थी। और शादी ब्याह में अपने पुरान घर की मयादा के अनुरूप विवाह के जोड़े और नग के रुपये भिजवाती थी। सावन में मक आन वाली माहन्न की विवाहित लडकियों के लिए भूना डालनी थी और उहें अपने बच्चों की तरह खिलाती पिनाती और मेहदी रचाकर, पस दकर विदा करती थी।

मैं घर में बिल्कुल अकेला ही रहता था, कोई मेरी उम्र का नहीं था। अपन निपट अकेलेपन में मुझे सहसा अपने स बड़ी उम्र की एक लडकी की निकटता मिली और मैं चौबीसा घण्टे उसके ध्यान में डूबा रहन लगा। उसकी कोठी में जाते हुए मुझे हमेशा डर लगता था क्योंकि कोठी के ठीक पीछे जगली भाडिया थी और सापा के बिल थे। गाम के उत्तरत अधरे में उससे मिलने जाना, जान पर खेलन के समान था क्योंकि मुझे सापा से बहुत डर लगता था वहा जात हुए मैं हमारा चिडियो की आवाजा पर ध्यान दता था। कयो चिडिया साप के होने का जल्दी अनुमान लगा लेती हैं और मिल जुलकर शोर मचाने लगती हैं। जब जब चिडिया चीखती होती, मैं वही नाले वाली गगडडी पर ठिठक जाता और कुछ देर बाद लौट आता था। तीसरे चौथ दिन जब भी उमम

मिलना होता और वह विवायत करती तो मैं समाज को बुरा भला कहता—यह समाज बहुत खूर है जा हमे मिलन नहीं देता—तब हमे मिफ इनना पता था कि समाज नाम की कोई बेरहम चीज होती है जो प्रेमोजना को नहीं मिलन दती—सापा का इसम क्या दखल ? और दा तीन साला के बाद जब मेरी इस प्रेमिका का विवाह हुआ तो सयोग म मैं इत्ताहावाद से मनपुरी पहुच गया था । घर पहुचत ही मा न नाई को बुलाकर मेरे बाल छाट करवाए थे क्योंकि उह लम्बे लम्बे पट्टो मे चिढ़ थी और उम लडकी के चाहने पर भी कि मैं विवाह से पूव उमस मिन लू मैं अपने नाम मात्र वाला के कारण उमस मिन नही पाया था ।

“उयादा पदान से लटके हाथ से निकल जात हैं ।” यह मेरे सबसे बड सौतन भाई का नारा था, हालाकि वे घर म अलग थे पर तु घर मे फिर भी उनका रोब था । मुझे दमवी क आगे पत्नाया जाए यह उह मजूर नहो था । उन दिती के कालपुर छावनी म यारोपियन इस्टीट्यूट मे मनजर थे । वह इस्टीट्यूट अग्रेज और अमरीकी फौजियो की विलासिता का अड्डा था । दूसरे महायुद्ध का समय था । नगे म धुन फौजी जब आपस म लडते हुए बार के गिलास और बोतलें चलाने लगत तो मरी आत्मा काप जाती थी और मैं बार काउटर के नीच रयी पेटियों के पीछे दुबक जाता था । अदर डास-हाल म आरकेस्ट्रा बजता रहता था । गलरिया म हौजी चलती, संगीत, नाच, गालिमो चीखो और कराहा से वह पूरी इमारत गूजती रहती थी । लडकिया के साथ वे फौजी जानवरा की तरह पग आत थे । लडकियो की अपनी मेजा पर नगा कर देते थ या मैदान मे नग होकर दौडत और लडकिया का पीछा किया करते थ ।

मुझे बारबारा की घटना याद है । वह भारतीय रिडिबयन थी और सबसे सुन्दर थी । उस उन फौजिया न इतना काटा पीटा था कि वह युद्ध-क्षेत्र से लौटे हुए सैनिक की तरह लगती थी । एक रात किसी टामो ने उसकी जाघ पर टूटा गिलास भार दिया था बहुत खून बहा था— किन्तु अगली रात वह फिर मरहम पट्टी करवा के नाचने आई थी और मैंन उसे हाल के बाहर मैदान मे लहूलुहान खरगोश की तरह भागत दखा

था—तीन टामी उसका पीछा कर रहे थे ।

रात की काली चादर आकाश में गू गू करत हुए हवाई जहाज । छावनी के फौजियो के बूटो की आवाजें सेना के ट्रका तथा जीपों की जू जू शराब, सगीत और मास के समुंदर में गोते लगाते हुए गोरे फौजी ब्लैंक आउट भयानक आवाजो में चीखते हुए सायरन ।

मुझे लगता था कि यह दुनिया मेरी नहीं है । हर रास्ते पर 'ना एण्ट्री' के बोर्ड थे और पग पग पर कटीले तारा के घेरे थे । मैं भाग छड़ा हुआ था अपने छोटे से कस्बे की ओर, जहाँ तमाम आत्मिक दुखों के बावजूद भी लोगों की आँखों में जान-पहचान दिखाई देती थी । ब्राच लाइन की रेलगाड़ी छोटे छोटे उदास स्टेशन और सूखे पेड़, खेत, तारों पर बठी हुई बिडिया सूने प्लेट-फाम पर गाड़ी की प्रतीक्षा करते हुए आवाजा कुत्ते और अकेला स्टेशन मास्टर । मैं घर लौट रहा था, ब्राच लाइन की गाड़ी बूले हिलाती भाग रही थी । खिड़की से सूने प्लेटफाम को देखता हूँ, तो एक डिब्बे के बाहर हसिया हथौड़े का लाल भण्डा लगा दिखाई देता है । प्लेटफाम पर उतरकर मैं जिज्ञासाभरी दृष्टि से डिब्बे के यात्रियों को देखता हूँ—मैं लड़ने के लिए उस डिब्बे में घुस जाता हूँ । ऊपर पहुँचकर पता चलता है कि वह 'भण्डा' क्रांतिकारी सोशलिस्ट पार्टी का है भगतसिंह और चंद्रशेखर आज़ाद की पार्टी का । उस डिब्बे में योगेश चटर्जी और यू० पी० पार्टी के मेक्रेट्टी केशव मिश्र यात्रा कर रहे थे । मैं अपना अपना सबाल पूछता हूँ, उनसे झगड़ता हूँ । पता चलता है कि वे लोग किसी सभा के सिलसिले में मेरे ही शहर जा रहे हैं । योगेश चटर्जी मुझसे मेरे घर का पता ले लेते हैं और तीसरे दिन मेरे घर पर दस्तक होती है । मुझे लड़ाई का एक मोर्चा नज़र आता है । जिस पर मेरे साथ बहुत से साथी जुटे हुए हैं और इलाहाबाद जाकर मैं इनकलाबी सोशलिस्ट पार्टी का थोड़ा-बहुत काम करने लगता हूँ । साथ ही पढ़ाई भी जारी है तमाम पुस्तकें और पच्चे प्रत्येक दिन मिलत हैं जिनमें भारत का एक नया रूप है भारत के बाहर के दशों में चलने वाली लोकतांत्रिक लड़ाई के समाचार हैं उन अफ्रीकी एब गुलाम देगो के समाचार हैं, जहाँ जनता अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है । इलाहाबाद के चौक में

घण्टाघर के पास है पार्टी का दफ्तर, जिस पर वह लाल झण्डा लहरा रहा है। दूर दूर से लोग साइकिला पर आते और पास्टर पचों, कागजा तथा अखबारों के बण्डल दबाकर लौट जाते हैं। सड़की अखा में एक सपना है, एक सफलता की चमक है—मन में आग है। गाजीपुर के किसानों पर अत्याचार किए गए हैं। कानपुर के चमड़ा कारखानों के श्रमिकों की छटनी हुई है। चुंगी के सफाई दरोगा न नौजवान मेहतरानी की इज्जत लूटी है, दिल्ली की विदेशी सरकार ने जनता की मर्जी के विरुद्ध आग्रह दिया है। नेतागण आज प्रातःकाल बंदी बना लिए गए हैं। दक्षिण अफ्रीका में गोरी सरकार न गोली चलाई है और उतनी ही तर्ज से हमारे प्रस्ताव पारित हो रहे हैं—विरोध, हड़ताल, आंदोलन, भाषण। पार्टी का वह छोटा सा कमरा थरथराता रहता है—'जन शक्ति' अखबार निकलता है और मैं उसमें श्रांतिकारिया की जीवनिया और जीवन क हालात लिखता हूँ। वही पार्टी के दफ्तर में बैठकर तमाम पुस्तकें पढ़ता हूँ और अपनी असली लड़ाई को पहचानता हूँ। जीवन में जैसे सभी कुछ है, केवल धन नहीं है, लेकिन अब पैसे का अभाव इतना नहीं खलता। इस जीवन में तो ये मुश्किलें भङ्गनी ही पड़ती हैं। हममें से किसी के पास पैसा नहीं है कपड़ा नहीं है, जूते नहीं हैं, विस्तर भी नहीं है प्रस्ताव हैं भाषण हैं, योजनाएँ हैं, सपने हैं—इसलिए सब कुछ है।

तभी देश स्वतंत्र होता है और शरणार्थियों की ट्रेनों इलाहाबाद पहुँचती हैं। विभाजन का घाव खाए हुए लुटेरे पिटे लोग बदहवास आँखों से चारों ओर देखते हैं। देश में बरत होने वालों के दुःख का बोझ मन पर है। सब कुछ छोड़कर भी वे परास्त नहीं हुए हैं। बाजू टूट गए हैं पैर कट गए हैं, आँखों में भयानक रक्तपात की परछाईयाँ हैं लेकिन ये कसा विचित्र जीव—आदमी है कि अपने आपसे कभी हारता नहीं है।

मैं अथ स्वयंसेवका के साथ रात दिन ट्रेकी पर रसद और अथ सामग्री लदवाकर गंगा पार शरणार्थियों के कम्पों में जाता हूँ। वहाँ फौजियों की वही बैरबैं हैं जो कानपुर छावनी में थीं। किंतु अब खाली हैं। बुरी हालत में हैं उन्हीं में शरणार्थी कम्प खोलते हैं, और उजाड़ भया

नक बैरको मे शरणार्थी एक नया जीवन आरम्भ करत ह । वे कबरीली जमीन साफ करके सड्जियो की ब्यारिया बना लेत ह । कोई कोई जगली फूलो के पौधे भी लगा लेते ह । हर सुबह जब हम स्वयमवको के बेद्रे मेयो हाल से ट्रका पर सामान लादकर चलत ह तो उन लोगो की शक्लें याद आती ह, जो वहा वीराने म पडे हमारी प्रतीक्षा कर रह हांगे । हमारा ट्रक पहुचत ही वे आपस म लडने लगते थे, किन्तु वाद म वही लडन वाला हरेक का भाग लड भगडकर खुद उस दिलयाता था, जिसे नही मिल पाया है । वह लोग अपन छूटे हुए घरा और बिछडे हुए लोगो को याद करके रो पडत थे । वे बेचारे मौत का दरिया पार करके आए थे ।

एक दिन सामान बाटन के बाद जब हम लौटन लगे तो एक अघेड औरत हमारे ट्रक के पास आकर खडी हो गई थी । ' भ्रा जी, हम अस्पताल पहुचा दो, बडी कृपा होगी ।' उस स्त्री का कोई नही था । सब घर वाले मारे गए थे । वह अकेली थी और दूसरे दिन उसने एक बच्चे को जम दिया था ।

'जन शक्ति' अखबार बराबर निकल रहा था । उसमे मैं कुछ अधिक ही लिखने लगा था । अपने आदर्शों के प्रति और भी लगाव बढ गया था । साथियो का दढ निश्चय मेरे विचारो म परिपक्वता ला रहा था । पार्टी के दफ्तर मे एक दिन मैं अकेला था और आना मिली थी कि मैं वहा से हटकर न जाऊ । हमारी पार्टी के नेता कांग्रेस के लीडरा से किसी महत्त्वपूर्ण समस्या पर विचार विमश करने दिल्ली गए थे । उसके बाद कोई लौटकर नही आया । पार्टी के जिम्मेदार लोगो ने कांग्रेस मे मिलना स्वीकार कर लिया था । और मेरे तमाम साथी हताश होकर अपने अपने गाव लौट गए थे । मैं पार्टी दफ्तर मे बैठा लोगो की वापसी की प्रतीक्षा करता रहा । लेकिन कोई वापस नही आया । सारे दस्तावेज, प्रस्ताव, भाषण, सपने—सब बेकार साबित हो गए । और प्रतीक्षा करत रहने के बाद जब धबराकर अपने आदर्शों को लेकर मडक पर आया तो दुनिया फिर बदल गई थी । एक रक्त-श्लोष दुनिया मुझे भूखे भेडिये की तरह घूर रही थी ।

उधर कालेज म गलत आरोप लगाकर दो बष तक कालिज स निकाल दिया गया था और मैं अपन से हारने लगा था कि तभी किसी ने

बहुत अपनत्व से कहा था, "गिरका, प्याज और रोटी भी मिल जाएगी तो भी हम बितने खुश होंगे, घबराते की क्या बात है।"

मैं और मेरा एक साथी तब किमान अदालत के सिलसिले में पार्टी आफिस में पकड़ा गया था। हम नैनी जेल में डाल दिया गया—न हम पर चार्ज लगाए गए थे, न हम अदालत के सामने हाजिर किया गया था। हम दोनों अभी उम्र से नाजालिम थे इसलिए उनीस दिनों बाद जब मुग्य जेनर राउण्ड पर आते तो हम दोनों को छुटकारा देकर जेल में भगा दिया गया था। जमुना का पुल पार करके तब मैं गऊघाट पर पहुंचा था।

जमुना में छलांग लगाकर आत्महत्या करने की सोच रहा था, क्योंकि अन्न न पार्टी थी, न जनशक्ति अखबार था, न साथी थे, न सपने थे—सब कुछ बिखर गया था, घर भी बहुत पीछे छूट गया था उस वक्त मेरी पराजय, मेरी हताशा और बुजदिली ने साथ दिया था और मैं गऊघाट से मोहताशिम गज वाले घर की तरफ सौट रहा था कि रास्ते में हिंदी साहित्य सम्मेलन का पुस्तकालय पड़ा था। थके और दिशाहीन पर यो ही रुक गए थे और मैं पुस्तकालय में बेसबब पहुंच गया था। वहां दीवारा पर बैसी ही तस्वीरें लगी हुई थी, जसी मेरी बैठक में लगी थी और क्षण-भर के लिए लगा था कि जैसे इतने वर्षों के बाद मिट्टाथ उही तस्वीरों को दिखाते हुए मुझे बता रहे हों—'यह तस्वीर बाबा की है और यह बाबूजी की है जब बाबूजी का हाटफेल हुआ था तब तू तो बहुत छोटा था। बाबा को मैंने भी नहीं देखा।' और भारतेन्दु हरिश्चंद्र की तस्वीर बाबा की तस्वीर की तरह ही धुधली सी थी, और थी प्रेमचंद की तस्वीर जब वह मरे थे तब मैं बहुत छोटा था, और उसी दिन से मेरा परिवार बदल गया था।



मेरी साहित्यिक यात्रा तब से शुरू होती है तब मेरा परिवार बदला था। मैं क्षत्र विक्षत जमींदार घराना छोड़कर प्रेमचंद, राहुल, निराला यशपाल, अमृतलाल नागर के घराने में आ गया था। परन्तु मेरे परिवार के बदलने का पता किसी को न था। मा को कुछ आभास हो

गया था। यह कभी-कभी पूछती थी कि प्रेमपाद कौन है? मैं उनका पूछना था कि यह जितावा पिता बैठक में लगा हुआ है, यह मर कौन है? मांकी छातों भर आती थीं, गाय ही मरी भी—यह मोचकर कि बाजूनी का प्यार मिला होगा तो गायद मर अघरघर बचपन धीरे जीवन के गुन का गगाटा कुछ कम हो जाया, मुझे कोई बताया कि यह दुनिया क्या है दग गमार का नियम क्या है धरा बाजूनी का गाय मते में जान में क्या सुरा मिलता है उतने पमा की मांग करती में बंगा धान धाना है।

मैनपुरी का यह बटा सा मकान, मई जून की माण गाण करती दाक्टर, उदती हुई धूस तपती हुई दुनिया धीरे गिरत धरेला मैं। बाजूनी का तोजत हुए मैं उम गुवाट वासे हुए पर चला जाता था, जिगर्वा पटिया पर उमा हाटफेन हुआ था। ऊपर टिनरा-मा नीम का पड मानन बहता गदा जाता बगल में जाती ककर की सटक पर जाता हुआ बाई सटसटाता इतरा हापना हुआ घोटा दबी के स्थान तक गाती हुई जान वाली मुहागिनी की टोली— ऐ! गौरा मया ऐ! दुर्गा दबी माया टेवू तुम्हार द्वार! ऐ मया मोरी हमको सेज उबार

धीरे धीरे दूर ककर की सटक पर मुहागिनी की टोली, जनती धूप में पारे की भांति बापकर तो जाती उनकी भावाज डूब जाती। हापना हुआ घोटा अठठे पर पहुचकर रब जाता। फिर सनाटा छा जाता। धीरे तब मैं हुए की तपती हुई जगत पर चढ़कर क्लिप्तमिलात पानी में बाजूनी की छाया डूबते हुए भावाज लगाता 'बाजूनी बाजूनी! भावाज इटो का गोल घेरो से टकराती हुई नीचे पतले पाताल में टकराती, पानी की मिल-मिलाहट कुछ धीरे तेज होती धीरे हुए से घबराती—'कौन?'

"बाजूनी मैं!"

लेकिन कुधा फिर सामोण हो जाता। नीम की झडती पतिया चकराती हुई इस अघेरे हुए में खो जाती फिर कोई ध्वनि लौटकर नहीं आती। धाक बार अनेला मैं बाजूनी को भावाज लगाने उस हुए पर गया, लेकिन वे नहीं बोले। तब मैं अपना दिलोदिमाग अघा कुधा बन गया है जिसमें मैं निरंतर भावाज लगाता हूँ 'बाजूनीSSS!' कोई भावाज पूछती है 'कौन?' धीरे जद मैं कहता हूँ 'बाजूनी मैं' तो फिर कोई

उत्तर नहीं आता ।

घोड़े के लिए इक्के वाला था । मुहागिनो की गौरा मैया थी, पर मेरे लिए तो कोई नहीं था । मेरे लिए तो बाबूजी सिफ साए साए करती हुई दोपहर थी । बाबूजी मेरा अकेलापन थे उड़ती हुई धूल थे नीम की झड़ती हुई पत्तियां थे गलियां और ककड की सड़क थे । मैं यह भी नहीं सोच पाता था कि कहीं जाना पड़ा तो उनके बिना कैसे जाऊंगा । पतंग के लिए किससे कहूंगा सवेरे जब बिब्वन के बाबू जलेबिया लाएंगे तो मैं किससे कहूंगा—'बाबूजी जलेबिया खाऊंगा ।

मुझे अच्छी तरह याद है इम्तहानो के समय रमेश के बाबू श्याम चरण बिब्वन के बेंचेलाल और मुनुवा के अब्बा मुह्तार साहब अपने बेटा के लिए पेसिला की नोक बना बनाकर दिया करते थे और चबूतरे तक पीठ ठोकत हुए और उनकी हिम्मत बढ़ाते हुए पहुंचा जाते थे, जहां से हम टोली बनाकर परीक्षा देने स्कूल जाते थे । तब मेरी अगुलियां मेरे सून म सनी पट्टियां बंधी होती थीं, क्योंकि तेज ब्लेड से मैं अपनी पेसिल खूद छीलना था । धूल मिला पसीना जब कटी अगुलियों में चिरचिराता था तो कापी पर 'सन आफ जगदम्बा प्रसाद' लिखते लिखते आखें छलक आनी थीं और बाबूजी का लिखा हुआ वह नाम कुए में भिन्नमिलाते जल की तरह जागकर चुप हो जाता था ।

जब बाबूजी इतने कठोर हो गए तो मैंने अपना दिल बहुत कड़ा कर लिया था और उनके सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं लिखा । एक बार लिखा था उनसे पूरा बदला ले लिया । 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में उह मैंने अपने बेटे की प्रतीक्षा करते और तड़पत उसी तरह देखा है, जैसे मैं वास्तविक जीवन में उनकी प्रतीक्षा करता और तड़पता रहा हूँ ।

मुझे ठीक तरह याद है रामलीला में लका दहन हो चुका था । मेरे सब साथी मेले से अपने अपने घरवालों या पिता के संग घर लौट गए थे । रावण के पुतने की जली हुई खपञ्ची से मेरा पैर जल गया था और मैं बिलबिलाता हुआ वहीं गिर पड़ा था, तब उस अंधेरे में एक आवाज आई थी—'बौन ?' और मैंने देखा था कुरावली के मोटर-अड्डे पर चाट मिटाई

का ठेला लगाने वाला हलवाई मुझसे कह रहा था—“क्या बेटा 'पैर जल गया चच् चच् ।' उसदरत मेने से लौटते हुए उसन अपन थाल की सरकाकर साइकिल ठेने पर मरे लिए जगह बना दी थी और उस पर बिठाकर तीन मीन चलकर गली के नुकनडतक मुझे छोड गया था । गस्त मे उसने मुझमे बहुत-सी बातें की थी । उनमे स एक ही अब तक याद है—‘बेटा इस ससार का कोई बाप नही है चाहे जितने रावण जलाघ्रा चाहे जितने रामजी सजाघ्रो ।’

मुझे नही मालूम कि मेले मे मेरे पैर जल जाने पर मर बाबूजी जगदम्बा प्रसाद क्या बहते, लेकिन उस बाप ने जो कहा था ‘गामद उन ‘बहानीकार पिता को ही मैं आवाजें लग लगाकर खोजता रहा था ।

मैं अत्यंत विनम्रता मे कहना चाहूंगा कि प्रेमचंद की परम्पराघ्रा के ‘बडबोला’ से मुझे कोई गुरेज नही है क्यकि वे प्रेमचंद की परम्पराघ्रा के दावेदार हैं और मैं केवल प्रेमचंद के दृष्टिकोण का एक साधारण सा अनुयायी मात्र हू । जो प्रेमचंद की धाती के उत्तराधिकारी हैं वे वात्स्यायन के लैंगिक दृष्टिकोण को सराह सकते हैं, जैनद्र के क्षत विक्षन और व्यक्तिवादी ससार मे अपन सतोष की सामग्री पा सकत हैं, और बडे भोलेपन से कह सकते हैं—“आदोलनो से अच्छी बहानी नही लिखी जाती । अच्छी कहानी तो गहर चिंतन एव मनन के कारण ही जम लती है ।” और फिर वही लोग ‘सहज बहानी’ का मरियल आदोलन चलात है ।

मेरे लिए मेरा प्रेमचंद बुरावली के मोटर अडडे का वह हलवाई है जो कहता है, ‘इस ससार का कोई बाप नही है चाहे जितने रावण जलाघ्रो, चाहे जितने रामजी सजाघ्रो ।’ सही साहित्यिक दृष्टिकोण यदि मुझे प्रेमचंद से प्राप्त होता है तो सही जीवन की दृष्टि मुझे चाट मिठाई लगाने वाले उस हलवाई से मिलती है मेरा प्रेमचंद बह ठेले वाला है यही मैंने प्रेमचंद से सीखा है और इसी को मैं उनकी देन मानता हू ।

बहरहाल—ऊपर से कमाल यह है कि वे साहित्यकार जो प्रेमचंद क शुभगुजार नही हैं बल्कि मोहताज है, बडे भोलेपन से आग कहत हैं—“किंतु बुराईया हैं तो बस दो—एक तो यह कि इस धधे मे (यानी आदोलन मे) बहानी बदनाम हो जाती है और दूसरी यह कि जहा दो चार

चतुर खिलाड़ी कतववाजी दिखाकर अपना उल्लू मीधा करत है वहा पचासो नये लिखने वाले जिनका साहम बढ़ाया जाता और जिहे उचित ढंग से माग दशन दिया जाता तो वे कुछ रचनाए भी दे सकत थे । परंतु वे बेचारे सदैव के लिए भटक जाते हैं । यह वकनव्य देने वाल उही निरोह साहित्यकार की यदि याद दिनाऊ तो शायद वे तिलमिला उठेंग कि जब सन सत्तावन प्रट्टावन मे एक कमलेश्वर नाम के नय साहित्यकार का दूसरा कथा सञ्चलन 'कस्बे का आदमी आ रहा था तो उहोंने अपन पुराने कथा सञ्चलन 'तिरगे कफन का नाम बदलकर 'कस्बे का एक दिन' कर दिया था, यह 'गायद कतववाजी नही थी बल्कि एक साहित्यिक कतव्य था । क्योंकि स्वतंत्र भारत म तिरग कफन स खतरा था और साहित्य मे, कस्बे की कहानी, गाव की कहानी, पहाडी अंचल की कहानी गहरी कहानी इत्यादि चल निकली थी । इसलिए 'कस्बे का एक दिन' गीपक साहित्यिक काय बन गया था ।

ऐसे भटके टुण वामपधियो के साथ ही दूसरी ओर हमार वे शाश्वतवादी और सच पूछिण तो कट्टर हिन्दूवादी लेखक हैं जो कहत हैं कि— "मानव के मन म ईश्वर से प्राथना याचना करन की आवाक्षा ही परमेश्वर की पहचान है ।" य शाश्वतवादी लोग निरंतर व्यक्तिगत रूप से अपने राजनीतिक आकाशो को पत्र लिख लिखकर मन म धार्मिक भावना की खोज भी करत रहते हैं और ऊपरी तौर से अपने 'राजनीतिक परमेश्वरो' को यह भी समझाते रहते हैं कि उनके मन म अपन 'परमेश्वर' के विरोधियो के विरोध की ज्वाला भी धधक रहा है और इस तरह व घडी चतुर्गई से दो नावो मे पर रखकर एक तरफ इंसानी परम्परा का विरोध करने हुए हिन्दूवादी आत्मवादी साम्प्रदायिक साहित्य लिखत रहत हैं और दूसरी तरफ राजनीतिक संरक्षण का सुख पाते रहत है । अपन साहित्यिक अस्तित्व को बनाए रखने के लिए इस प्रकार का जो दो रखा खेल खेला जाता है, उससे मेरा कोई सम्बन्ध नही रहा है । साहित्य म जीवित रहने के लिए जो लोग सासों ले रहत हैं उहें साहित्य और उमका इतिहास मुझकर हो । मैं अपने युग मे सभी कठिनाइया वृत्तपताशा और आकाशा के साथ जी रहा हूँ । इस कारण न मैं ईश्वर की आवाज

दे सकता हूँ न इंदिरा गांधी तक पहुँचने के लिए कमलापतियो के पैर छू सकता हूँ और न दूसरी नावों को साथे रहने के लिए 'जयप्रकाश नारायण' का साथ दे सकता हूँ। मैं अपने युग के मानव का साथ छोड़कर कहीं नहीं जा सकता क्योंकि मेरे युग में प्रत्येक पिता अपने पिता को खोज रहा है। मेरी अकेली खोज कोई महत्त्व नहीं रखती यदि वह हमारे युग की सामूहिक खोज का हिस्सा नहीं है तो ! इसलिए मन के अंधे कुएं में अब कमलेश्वर के बाबूजी को डूबना निरर्थक लगता है, क्योंकि सामान्य व्यक्ति के दुःख का पता करना अधिक महत्त्वपूर्ण और जरूरी है।

यहां से मेरी उन गदिश-भरी कहानियों का आरम्भ होता है जिन्हें कुछ वर्षों पश्चात् हिन्दी के कथा साहित्य में 'कस्बे की कहानियाँ' कहा गया। मेरा घराना उसी समय सहसा बहुत बड़ा हो गया था। पूरा मैनपुरी कस्बा, उसके लोग, उसके पेड़, सड़कें गलियाँ, कुत्ते, नाले, घास पत्त, कुएँ, चौराहे, सब की ददभरी दास्तानें मेरी हो गई थीं। चबूतरे पर बठकर खासते हुए सैय्यद अली पेंटर, चुगी के चौराहे पर चाय की फटीचर दुकान लगाए चाय बाबू मैनपुरी की तम्बाखू खात जीहरी वैद्यजी, एटा से आए बस अड्डे पर काम करते हुए क्लीनर और ड्राइवर, सबकी कहानियाँ मेरी हो गई थीं। वास्तव में वह समय बड़ा ही दुःख भरा परंतु अद्वितीय था। मुझे हमेशा लगता था कि उनकी दास्तानें केवल मुझे मालूम हैं आश्चर्य की बात यह थी कि उन सब लोगों को चोट लगने का दद तो होता था। टी०बी०, बुखार, दमा से होने वाली तबलीफ का भी पता था। परंतु उन्हें अपनी विवशता, बदहाली, बेपनाह गरीबी आदि के कारणों का आभास तक न था। उन्हें एक बने बनाए जीवन का डर्रा दे दिया गया था। जिसमें स्त्री बच्चों को जन्म देने की मशीन और पुरुष की काम वासना को तृप्त करने का माध्यम थी। मगी गदगी साफ करने के लिए थे, मेहरी बतन माजन के लिए थी। सपेरे केवल साप का खेल दिखाने के लिए थे, नाई पीड़ी दर पीड़ी हजामत बनाने के लिए थे। मण्डी के आदतिए केवल मण्डी के लिए थे। चाट वाले बस सोबा लगाते थे, साइकिल रिपेयर करने वाले केवल साइकिलों को मरम्मत करते थे। धाबू छुरियों पर धार लगाने वाले जीवनपथ त केवल सान चढ़ाने वाला

चक्का खींचते थे, मालिक मालिक ही बने रह जाने के लिए थे और मुनीम मुनीम बने रहने के लिए बिगना थे।

मभी कुछ रुका हुआ था जुम्मान को मने सवारियों की प्रतीक्षा करते और स्टेगा पर अपना इक्का लगाए बूढ़ा होते देखा था। लगा था कि वह वहीं बैठे बैठे बूढ़ा हो गया है। वह चाय-बाबू जो शुरू-शुरू में बड़े दम-खम से कस्बे में चाय सोडा, लेमन की दुकान लगाकर बैठे थे, उसी टोन की कुर्सी पर बैठे बैठे व्यतीत हो गए। करमबंद छोट और गजी का कपड़ा नापते नापते ही पोपले हो गए। डाक्टर दुग्गे के कम्पाउंडर उस बच्चे घर में साप काटने में मर गए और रहमान का सौतेला बेटा रामलीला के पुत्र बनाने लगा पर उसका घर वैसा ही और वही रहा। सापा का डर खत्म नहीं हुआ। साप पकड़ने वाला गफूर लकड़िया काटत-काटते और ताड़ी पी पीकर एक दिन कुल्हाड़ी से सर टिकाए यू ही सोना-सोता चला गया। रमेश की बुआजी उसी तरह दरिया बुनती-बुनती आधी पागल हो गईं। कोई लडका कस्बा छोड़कर भाग गया, कोई भागा हुआ मार खाकर फिर लौट आया था और इमली के पेड़ मौसम पर उसी तरह फूलते रहे काली आधिया उसी तरह आती रही, तीज-त्योहार अपने अपने समय पर लौटते रहे, कचहरियों में मुकदमें चलते रहे, पुराने डाक बाबू के स्थान पर नए डाक बाबू आते रहे। फरुखाबाद के कोतवाल मैनपुरी में आ गए। मैनपुरी के कोतवाल आगरा चले गए, पैसंजर गाड़ियों से दर-सवेर लोग आते रहे। बसों से उतरकर लोग मराय और मण्डियों में क्रय-विक्रय करते रहे परन्तु मेरी मैनपुरी का आदमी वही रहा वैसा ही रहा, उसके लिए कहीं कुछ नहीं बदला, उसे पता ही नहीं था कि कहीं कुछ बदलता है, कहीं कुछ बदलना चाहिए।

इसी वानावरण में मेरी कहानियां, गमियां के दिन, राजा नरवसिया, मुदों की दुनिया, देवा की मा, कस्बे का आदमी, एक सड़क सत्तावन गलिया (उपयाम), भटके हुए लोग, बेकार आदमी, अपनी अपनी आखें सालन और सास लेन के लिए बिगना थे।

य दिन प्रातिवारी और समाजवादी पार्टों के साथ के दिन भी थे। यही दिन मेरे भाई सिद्धाथ की मृत्यु के दिन थे। जिन पर टूटे हुए परिवार

की सारी आशाएँ लगी हुई थीं क्योंकि सिद्धाथ के बड़े होत ही हमारे घर की हालत भी सुधर जाती। यह दिन बड़े भाई मन्ना दादा के नयानवसंधप के दिन थे, जब वह बारह रुपये माहवार की आमदनी में सार परिवार का किसी तरह निवाह कर रहे थे। यही दिन मेरी माँ का दुःख का दिन था। जब वह मुझे आगे पढान भेज रही थी और मरी मनपुरी मुझसे छूट रही थी। तीन के छोटे से सूटकेस में मेरी तीन कमीजें एक कुता और तीन पावजाम रखकर मैं न मुझ बनवास दे दिया था और खुद जैसे गाधारी की तरह आँसु पर आसुआ की पट्टी बांधकर सुख दुःख में अलग होकर वह उस मैनपुरी बाग घर में त्रिकुल अकेली रह गई थी। जगन्नाथ टलर मास्टर को स्टेशन भेजकर उहाँ पहले ही इलाहाबाद तक का रस का किराया मालूम कर लिया था जा उहाँ धीरे धीरे जाँच था। चलते समय रास्ते के खर्च के लिए उहाँ बारह घान और दिए। इक्के की भी जरूरत नहीं थी, पैसा भी नहीं था, इसलिए बचपन के मित्र विब्वन अपनी साइकिल लिये खड़े थे। चलते चलते मैंने मेरी हथेली में तांबे का एक पैसा थमाया और कहा था—“रामत न नदी पड़ेगी उससे चढा देना।”

डगमगानी साइकिल पर जब अपना छोटा-सा टीन का सूटकेस सम्भाल मैं कैरिअर पर बैठकर चला था तो मैंने वही आसुआ की पट्टी आँसु पर बांधे अपनी गाधारी माँ को पलटकर देला था। वह गली के लागा से कह रही थी, “कलान आगे पढने जा रहा है।” दाहिन हाथ में टीन का बक्स था। बाय बाजू से जब मैंने आँसु पाछी तो विब्वन की साइकिल डगमगा गई थी। वहीं नाल की भीची दीवार पर पर टिकाकर विब्वन ने सास ली थी, “यार कैलाश! जब तू बी० ए०, एम० ए० कर लेगा तो समझूंगा मैंने कर लिया। हमें तो जुलाइ में नौकरी मिल जाएगी तुम इलाहाबाद से आना तो साइकिल की गद्दी के लिए एक बकर लेते आना—यह साली स्प्रिंग बहुत काटती है।”

विब्वन ने मुझे स्टेशन पहुँचा दिया था और पैसंजर गाड़ी से शिकोहा-बाद होता हुआ मैं इलाहाबाद पहुँच गया था। मैनपुरी की यादा से भागन के लिए बाहर देवना बहुत आवश्यक था। रास्ते भर मैं नदी गले खेत-पड, तरह-तरह की घासी और बिडियो को देखता अपने में डबता उत-

राता चला आया था। फिर तो इन्हीं बार इलाहाबाद और मैनपुरी के बीच सफर किया कि लगभग हर सहर जाने का पता कोई गास रनवे की पानी की टकी, कोई रास पट, कोई रास भावाज, कोई चिठिया का झूठ या कोई महक उम्र जाने जाने स्टेशन का बन्ती का पता दूनी थी।

इलाहाबाद पत, निराला और महादेवी का नगर है। यह पता मुझे बहुत देर बाद चला था। मेरे लिए इलाहाबाद मोहनगिरम गज था। हीपेट रोड था, बादनाही मण्डी थी जीरो रोड था, बहादुर गज था और बीर था। मेरी दुनिया पन, निराला और महादेवी की दुनिया नहीं थी। मेरी दुनिया में उन गमय बीटी बतान तात दूष वात पण्डे, मानी महल सिनमा के गट बीपर, नागबाई, ए० जी० धाविग म काम करने वाल, धपवाल बालिज के गामन धपवार बेपन वात, हन प्रवागन के गामन रात की पराई-मन्त्री के ताबे लगान वात और घटर्जी टेमर के ऊपर पीपे मासे पर प्रातिवारी पार्टी में काम करते जाने गामो थ। दगमवा प्रेस के कम्पोजीटर थे और थ राजा घाटिस्ट जो बाद में भाग्य के लिए स्वेपेड बनाता सगे थे और थ मुमुष भाई जो राजा गाहन घाट नाम से इलाहाबाद की दुकानो के लिए गाहन-बोट पण्डे किया करते थे।

इन सब में लगातार दो बाने गजर घाली थी—एक तो था कि थ गभी लोग वहीं न वही धपन धपन विनागा और परम्पराओं में टुट हुए थे। गभी के मन में गदी में पगा बड़ान का दगुर था और दगुर एक की गीट की कोई न कोई मित्र वही पन काट ग्यो थी।

यह गभी साग बडे धारणार थ धपन मन इगान, भविन गाग ही कुबर्मी, मानोत्री, बामाग बीपी स्वायी, उगार एष बीमन मना धपन थी यह दुनिया हरेक के पास एगा कुत था जो दगुर के पास न था। भविन एगा भी कुत था जो गभी का एक ही गज न काट ग्य था।

गाहिनिक धर ग तो मग परिषय बगन बाग थ एगा। मी म एगा यह गगार एकर धपन था। इन्ही दुनिया के लिए मुझे मरना था मरना वही था होगा, मी मी के लिए मरना परतु एगा म कि मरना मरना गाहिनिक धर म मरना परी। भविन मुझे दग बगन ए मी म कि मुभन एग न मरना मरना वही मरना मरना का मित्र न कर बुद न।

पता मुझे उम समय चला जब मैंने साहित्य का अध्ययन प्रारंभ किया, वरना मैं तो मादस का विद्यार्थी था। मुझे साहित्य वाहित्य से कुछ लेना दना नहीं था। वास्तव में मुझे यदि यथायवादी साहित्यकारों की स्वस्थ तथा प्राणयुक्त परम्पराएँ न मिलती तो मैं रेलवे का गाड़ या इंजीनियर होता और वहाँ उन लोगों के साथ मिलकर मधुपरत होता। परन्तु मुझे उक्त परम्परा के साथ साथ मिले दुष्यत, जितद्र, श्रीमप्रवाण श्रीवास्तव, अमरपान, आकार अन्नन, वीरद्र महतीरता, मारवण्डेय, सतीण पाण्डे, रामकुमार वमा धमवीर भारती, अमृतराय, उपद्रनाथ अन्व, बलवत सिंह आदि जस लोग, जिनसे वाद विवाद भी हुआ, सधप भी हुए और अपनेपन का अत्यत सुन्दर समय भी बीता।

इसके उपरांत घमामान सप्राम का काल है। नई कहानी का आदोलन इलाहाबाद का साहित्यकार सम्मेलन और प्रगतिशील साहित्यकारों की सभाएँ मोहन राकेश, राजेद्र यादव के साथ लम्बी लम्बी मुलाकातें और वाद विवाद। दिल्ली के वे दिन, नरेश बेदी, जयत गडकरी, परदुमन सिंह और समय-समय पर मिलते रहने वाले अरविद्र कुमार, मुकुल, उदय-नरामन, बुद्धि भट्ट और तब 'खोई हुई दिगाएँ', 'अपने देश के लोग', 'दिल्ली में एक मौत', 'माम का दरिया', 'बयान', 'जाज पजम की नाक', 'नीली भील', 'कुछ नहीं बोई नहीं 'जो लिखा नहीं जाता', 'पराया गहर', 'डाक बगला' 'लौट हुए मुसाफिर', 'तीसरा आदमी' लिखे जाने के दिन। यह दिन दिल्ली के दिन थे—जब मैं 'नई कहानियाँ' का सम्पादन कर रहा था और वाद में इगित साप्ताहिक का सम्पादन करने लगा था। इसके वाद मैं बम्बई चला गया—दिसम्बर 66 में।

फिर बम्बई में समातर चिन्तन का एक विशाल मंच, जिसमें सभी भाषाओं के युवा भारतीय साहित्यकार सम्मिलित हैं जिन्होंने मुझ-शक्ति दी है और दृष्टि भी। ये सब तो आपके सामने हैं, इन्हीं दिनों लिखी गई जोखम, रातें, इतने अच्छे दिन, नाममनी मानसरोवर के हम, लाश, हवा है हवा की आवाज नहीं है, कितने पाकिस्तान, काली आधी, आगामी अतीत इत्यादि।

यह वे वष है—जब मैं 'सारिका' का सम्पादन कर रहा था। यह

दूसरी तरफ एक साथक माध्यम टेलीविजन था, कुछ अपने विश्वासों के तहत और कुछ जौन की मजबूरियों के तहत—मैंन दोनो माध्यमो को स्वीकार किया। टेलीविजन पर 'परिक्रमा' कायक्रम मेरा विश्वास है, और फिर भी, डाकबगला, बल्नाम बस्ती, सारा आकाश, आधी मौसम, अमानुष, पति पत्नी और वह, साजन विना सुहागिन, बनिंग ट्रेन, राम बलराम, बरसात की एक रात, बाजी आदि तीस पैंतीस फिल्मे मेरा कुछ कुछ पूरा होना हुआ विश्वास भी और मजबूरी भी। फिन्मी-दुनिया में 'विश्वास' ने पैसा नहीं दिया, बल्कि विश्वास और मूल्यो के लिए बि'ए गए काम ने पैसा लिया, पर फिन्मी दुनिया की 'मजबूरियों' ने मुझे बहुत पैसा दिया। यह पैसा 'कथायात्रा' के प्रकाशन में लगता रहा और अब इस सुविधा को छोडकर मुझे दूरदशन का माध्यम अपनाना ज्यादा जरूरी लगा, इसलिए वह चमक दमक और लक्ष्मी की दुनिया छोडकर अब इस तरफ चला आया हू ताकि जो लिखना और करना चाहता हू, उसे लिख और कर सकू।

मुझे तो जो सबसे बडा सतोप है वह यह कि मैंने जो कुछ लिखा है वह शब्द शब्द पूणत पढा गया, इस कारण जौवन छोडकर इतिहास में जाने की आवश्यकता मुझे अब तक प्रतीत नहीं हुई। अत में इतना कि—मैं, मैं नहीं हू, मैं केवल एक व्यक्ति हू और मेरे समय के लोग—सामाय लोग और युग के समातर एव सम्बद्ध और प्रतिबद्ध लेखक मुझे रिरतर पूरा करते हैं। जो मैं नहीं देख पाता, वे देखन हैं, जो मैं नहीं लिख पाता, वे लिखते हैं और यह सिलसिला मेरी कलम से और आगे आनेवाल नय लेखको की कलम से लगातार चलता रहेगा, तब तक—जब तक आम आदमी का बतमान उस नहीं मिल जाता और उसका भविष्य तय नहीं हो जाता। मेरी गदिश/मेरी मौत जो बहुत दूर है, वे बाद समाप्त हो जाएगी लेकिन फलमो की गदिश तब तक जारी रहेगी, जब तक दु ख, अयाय, शोषण, अत्याचारो की मौत-नहीं-होगी।

यदि आप चाहते हैं
कि हिन्दी में प्रकाशित
नवीनतम उत्कृष्ट पुस्तकों का परिचय
आपको मिलना रहे
तो कृपया अपना पूरा पता
हमें लिख भेजें ।
हम आपको इस विषय में
नियमित सूचना देते रहेंगे ।

राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-१